विप्लव पुस्तक माला २६

फूलों का कुरता

(कहानी संग्रह)

यशपाल

विप्लव कार्यालय लखनऊ

प्रकाशक:-
विप्लव कार्यालय,
लखनऊ

मुद्रक:—
साथी प्रेस,
हीवेट रोड लखनऊ

समर्पण—

"सच कहदूं ए बरहमन, गर तू बुरा न माने,
तेरे सनमकदों के बुत हो गये पुराने !"

(हे पुरातन पंथी विश्वासी, सत्य तुझे कड़वा तो लगेगा परन्तु सच्चाई यह है कि तेरे विश्वास मन्दिर के आराध्य देव अब जर्जर और निस्सार हो गए हैं।)

यशपाल

सूची

कहानी	पृष्ठ

मुझे यदि संकीर्णता के संघर्ष से भरे नगरों में ही अपना जीवन बिताना पड़ता तो मैं या तो आत्महत्या कर लेता या पागल हो जाता! भाग्य से बरस में तीन मास के लिए कालिज में अवकाश हो जाता है और मैं नगरों के वैमनस्य-पूर्ण संघर्ष से भाग कर पहाड़ में, अपने गाँव चला जाता हूँ।

मेरा गाँव आधुनिक सभ्यता से बहुत दूर, हिमालय के आँचल में है। भगवान की दया से रेल, मोटर और तार के अभिशाप ने इस गाँव को अभी तक नहीं छुआ है। पहाड़ी भूमि अपना प्राकृतिक शृंगार लिये है। मनुष्य उसकी उत्पादन शक्ति से संतुष्ट है। हमारे यहाँ गाँव बहुत छोटे-छोटे हैं; कहीं कहीं तो बहुत ही छोटे, दस बीस घर से लेकर पाँच छः घर तक; और बहुत पास-पास। एक गाँव पहाड़ की तलैटी में तो दूसरा उसकी ढलवान पर। मुंह पर हाथ लगा कर पुकारने से दूसरे गाँव तक बात कह दी जा सकती है। ग़रीबी है, अशिक्षा भी है परन्तु वैमनस्य और असंतोष कम है।

बंके शाह की छप्पर से छायी दूकान गाँव की सभी आवश्यकतायें पूरी कर देती है। उसकी दूकान का बरामदा ही गाँव की चौपाल या क्लब है; बरामदे के सामने दालान में पीपल के नीचे बच्चे खेलते हैं और ढोर बैठ कर जुगाली करते हैं।

सुबह से ज़ोर की बारिश हो रही थी। बाहर जाना सम्भव न था। इसलिये आजकल के एक प्रगतिशील लेखक का उपन्यास पढ़ रहा था। कहानी थी:—

एक निर्धन कुलीन युवक का विवाह एक शिक्षित युवती से हो गया। नगर के जीवन में युवक की आमदनी से गुज़ारा चलता न देख युवती ने भी

नौकरी कर कुछ कमाना चाहा। परन्तु यह बात युवक के आत्मसम्मान को स्वीकार न थी। उनके संतान पैदा हो गई, होनी ही थी। एक, दो और फिर तीन बच्चे। मंहगाई के जमाने में भूखों मरने की नौबत। उनका बीमार हो जाना। अपनी स्त्री की राय से भले आदमी का एक सेठ जी के यहाँ नौकरी करना और उनका खुशहाल हो जाना।

एक दिन राज खुला कि भले आदमी की खुशहाली का मोल उनकी अपनी नौकरी नहीं, उनकी पत्नी की इज्ज़त थी। क्रोध के आवेश में पति पत्नी का गला घोंटने का यत्न करता है और पत्नी गिड़गिड़ा कर क्षमा मांगती है:—"जो कुछ किया इन बच्चों के लिये किया।" वह केवल बच्चों को पाल सकने के लिए प्राण-भिक्षा मांगती है और पति सोचने लगता है,— मेरी इज्ज़त का मोल अधिक है या तीन बच्चों के प्राणों का ?

ग्लानि से पुस्तक पटक दी......यह है हमारी गिरावट की सीमा ! आज यह साहित्य बन रहा है जिसमें व्यभिचार के लिये सफ़ाई दी जाती है। यह हमारी संस्कृति का आधार बनेगा। हमारा जीवन कितना छिछला और संकीर्ण होता चला जा रहा है ? स्वार्थ के बावलेपन की छीना झपटी और मारोमार हमें बदहवास किए दे रही है। मनुष्य की उस मानवता, नैतिकता और स्थिरता को हम खो चुके हैं जिसका विकास हमारे आत्मद्रष्टा ऋषियों ने संकीर्ण सांसारिकता से मुक्त होकर किया था। स्वार्थ की पट्टी आंखों पर बांध हम भारत की आत्मज्ञान की संस्कृति के परम शान्ति के मार्ग को खो बैठे हैं। क्या पेट और रोटी ही सब कुछ है ? इससे परे मनुष्य की मनुष्यता, संस्कृति और नैतिकता कुछ नहीं ?"—ऐसे ही विचार मन में उठ रहे थे।

बारिश थम कर धूप निकल आई थी। घर में कुछ अजवायन की ज़रूरत थी। घर से निकला कि बंकू साह के यहां से ले आऊं।

बंकू साह की दूकान के छाजन में पांच सात भले आदमी बैठे थे। हुक्का चल रहा था। सामने गांव के बच्चे 'कौड़ा-कौड़ी' का खेल खेल रहे थे। साह की पाँच बरस की लड़की फूलो भी उन्हीं में थी।

पांच बरस की लड़की का पहरना और ओढ़ना क्या ? एक कुर्ता कंधे से लटका था। फूलो की सगाई हमारे गांव से फ़र्लांग भर दूर 'चूला' गांव में संतू से हो गई थी।

सन्तू की उम्र रही होगी यही सात बरस । सात बरस का लड़का क्या करेगा ? घर में दो भैंसें, एक गाय और दो बैल थे । ढोर चरने जाते तो संतू छड़ी ले उन्हें देखता और खेलता भी रहता; ढोर काहे को किसी के खेत में जाँय । साँझ को उन्हें घर हाँक लाता ।

बारिश थमने पर संतू अपने ढोरों को ढलवान की हरियाली में हाँक कर ले जा रहा था । नीचे पीपल के नीचे बच्चों को खेलते देखा तो उधर ही आ गया ।

सन्तू को खेल में आया देख सुनार का छः बरस का लड़का हरिया चिल्ला उठा—"आहा, फूलो का दूल्हा आया, !"—दूसरे बच्चे भी चिल्लाने लगे ।

बच्चे बड़े-बूढ़ों को देख कर बिना समझाये भी सब कुछ सीख और समझ जाते हैं । यों ही मनुष्य के ज्ञान और संस्कृति की परम्परा चलती है । फूलो पाँच बरस की बच्ची थी तो क्या ? वह जानती थी, दूल्हे से लज्जा करनी चाहिए । उसने अपनी माँ को, गाँव की सभी भली स्त्रियों को लज्जा से घूंघट और परदा करते देखा था । उसके संस्कार ने उसे समझा दिया था, लज्जा से मुह ढंक लेना उचित है ।

बच्चों के उस चिल्लाने से फूलो लजा गयी । परन्तु वह करती तो क्या ? एक कुरता ही तो कंधों से लटक रहा था । दोनों हाथों से कुरते का आँचल उठा उसने मुख छिपा लिया ।

छप्पर के सामने, हुक्के को घेरे बैठे प्रौढ़ भले आदमी फूलो की इस लज्जा को देख कहकहा लगा कर हँस पड़े । काका रामसिंह ने प्यार से धमका कर फूलो को कुरता नीचे करने के लिए समझाया । शरारती लड़के मज़ाक समझ, "हो-हो" करने लगे ।

बंकू साह के यहाँ से थोड़ी अजवायन लेने आया था परन्तु फूलो की सलज्ज सरलता से मन चुटिया गया । यों ही लौट चला । सोचता जा रहा था, बदली स्थिति में भी परम्परागत संस्कार से ही नैतिकता और लज्जा की रक्षा करने के प्रयत्न में रक्षा से ही जाता है ? प्रगतिशील लेखकों की उघाड़ी उघाड़ी बातें……! हम फूलो के कुरते के आँचल में शरण पाने के प्रयत्न कर उघड़ते चले जा रहे हैं और नया लेखक कुर्ता चेहरे से नीचे खींच देना चाहता है…… ।

आतिथ्य —

रामशरण को भारत सरकार के अर्थ-विभाग में नौकरी करते तीन वर्ष बीत चुके थे। इतनी बड़ी सरकार की व्यवस्था में जगह और उसका आश्रय पाकर रामशरण ने अनेक ऐसी सुविधायें पाईं जो जन साधारण के लिये स्वप्न मात्र हैं। प्रतिवर्ष मैदानों को तड़पा देने वाली गर्मी से भागकर छः मास तक शिमला-शैल पर निवास और छः मास तक देहली के शाही शहर की रौनकें।

रामशरण का जन्म हुआ था मेरठ जिले के एक गांव में, जहाँ भूमि ऋतु-ऋतु में अपने उदर पर हल के फले का प्रहार सहकर बीज ग्रहण करने के लिये तटस्थ उदारता से प्रस्तुत रहती है। कुछ ही दिन हरी भरी फसलों के आवरणों से उस भूमि की नग्नता ढक पाती है कि किसान फसल को काट कर अपने खलिहानों में समेट लेते हैं। जमीन बेचारी बेरौनक और उदास हो जाती है और अपने को ढंक पाने की आशा में फिर हल का फला सहने के लिये तैयार होती है। वहां की प्राकृतिक स्थिति मनुष्य के उपयोग से घिस कर प्रौढ़ा गृहस्थिन की भांति होगई है जिसे काम-काज और उलझन के बोझ से दब कर कभी मुस्कराने का अवसर नहीं मिलता। उसकी ओर निगाह जाने से किसी रसिक युवक का मन गुदगुदा नहीं उठता।

रामशरण अपने गांव से लाये कनस्तर का घी खा कर दफ्तर में सरकार के आय-व्यय का हिसाब करोड़ों की संख्या तक कर अपने मस्तिष्क को थका देता। अवकाश के समय वह आस-पास की पहाड़ियों पर उन्मुक्त वायु में गहरे सांस ले, सीना फुला मीलों दूर तक

निगाहें दौड़ा कर प्रकृति का आनन्द लेता। अप्रैल मई के महीनों में घाटियों का फूलों के रंग लेकर खिलखिला कर होली खेलना, वर्षा के महीनों में आकाश का निरंतर गहरापन, बादलों का आकाश से बरस कर संतुष्ट न हो उमड़-उमड़ कर घरों के भीतर चले आना। धरती के धूप की मुस्कराहट के लिये प्रतीक्षा करते रहने पर भी बादलों का नखरा, रूपगर्विता मानिनी की भांति मान किये रहना, जिसके मान का अंत प्रेमी के व्याकुल हो जाने पर भी नहीं होता।...... और फिर जब प्रकृति चौमासे के मान को छोड़ मुस्करा उठती है तो फिर बीतते सितम्बर से घाटियों पर फूलों का पागल पन..... ! रामशरण का मन पुलक कर व्याकुल हो उठना—इस चमत्कारिक देश में दृष्टि के परे जाने क्या-क्या है ?

अनेक साहसी व्यक्तियों से, जो उन पहाड़ी देशों में दूर-दूर तक घूम आये थे, पूछ-पूछ कर रामशरण ने अनेक अद्भुत कथायें और वृत्तान्त सुने थे; वहां की प्राकृतिक छटा, नारी रूप और विचित्र व्यवहार ! जिस देश के उदार और भोले निवासी भटक कर अपने गांव में आगये अतिथि के सत्कार का अवसर पाने के लिये आपस में झगड़ बैठते हैं ; जहां चम्पा के रंग की गृहवधुयें अतिथि की थकावट मिटाने के लिये उसके शरीर को अपने हाथों दबाती हैं, अपने सामर्थ्य भर अतिथि के लिये कोई सुविधा दुर्लभ नहीं रहने देतीं ! वह देश देखने के लिये रामशरण का मन किलक उठता।

उस बरस जब अक्तूबर में सरकारी दफ्तर शिमला से देहली जा रहा था, रामशरण ने तीन मास की छुट्टी लेली। उसका विचार था, दूर-दूर तक पहाड़ों में घूमेगा और जाड़ों में शिमले को बरफ की रजाई ओढ़ कर सोते देखेगा। एक झोले में मामूली सा सामान, एक कम्बल और एक बल्लम लगी लाठी ले वह शिमले से चल पड़ा। 'मशोब्रा' 'ठियोग' 'नारकण्डा' और 'बागी' होता हुआ वह चलता चला जा रहा था कि ऐसी जगह पहुँचे जो आधुनिक सभ्यता के प्रपंचपूर्ण प्रभाव से मुक्त, स्वाभाविक रूप से सरल हो। वह 'रामपुर बुशैर' से भी आगे निकल गया।

थक जाने के कारण वह सड़क पर गिरते एक छोटे से पहाड़ी झरने के समीप बैठ गया। झोले में से निकाल उसने कुछ सूखा मेवा

खाया और पानी पी विश्राम करने लगा। उसकी पीठ के पीछे पहाड़ी चट्टान थी। ऊंचे वृक्षों से छनकर पड़ रही चितली धूप सुखद जान पड़ रही थी। सम्मुख, घाटी से उभरते तोष के जंगलों पर तैरती उसकी दृष्टि नीचे तलैटी में छिटके गाँवों की ओर लगी थी। बीथू की फसल पक कर पत्ते पीले पड़ गये थे और अनाज की सुर्ख बालें धूप में दहक रही थीं। कुछ दिन पहले कटी मक्का के भुट्टे मकानों की ढलवां छतों पर सुखाने के लिये फैला दिये गये थे इससे छतें केसरिया चादरों से ढंकी जान पड़ रही थीं। आंखों के आगे तो यह था परन्तु रामशरण को दिखाई कुछ और ही दे रहा था—सड़क के पिछले मोड़ पर ही नीचे के खेत से मनुष्य के गले का शब्द सुन कर उसने घूमकर देखा था तो दिखाई दिया कि दो पहाड़नें उसकी ओर निगाह किये आपस में हँस रही थीं। वह सोच रहा था कितनी सरलता है इन लोगों में? अच्छा होता यदि वह दो बातें उनसे कर लेता। अब की चूक गया, फिर ऐसा अवसर आने पर सही .... ।

झरने के समीप ही एक पगडण्डी पहाड़ से उतर रही थी। कदमों की आहट मिली। रंगीन टोपी पहने एक बूढ़ा, उसके समीप आया और हाथ की लाठी एक ओर रख जमीन पर बैठ गया। मुट्ठी होठों पर रख उसने 'बाबू' से एक सिगरेट मांगी। रामशरण, सिगरेट तम्बाकू के प्रति पहाड़ियों की कातरता से परिचित था। चलते समय कई डिब्बिया सिगरेट लेकर उसने झोले में रख ली थीं। एक सिगरेट निकाल उसने बूढ़े को भेंट करदी और सामने तलैटी में तथा आस-पास के गांवों के नाम पूछने लगा।

समीप की पगडण्डी को संकेत कर उसने पूछा—"यह रास्ता कहाँ जाता है ?"

"लतोड़ को"—बूढ़े ने तम्बाकू के धुयें से खांसते हुये उत्तर दिया—"आगे तिलगा है, फिर शारा। ऐसे ही गांव-गांव चोगी तक चला जाता है। पर छोटा जिन्नत है। हम लोग इन्हीं रास्तों से आते जाते हैं। सड़क तो बहुत घूमकर जाती है। इन रास्तों से दो दिन की मंजिल एक दिन में हो जाती है।"

"रास्ते में घने जंगल हैं"—रामशरण ने पूछा—"आदमी राह भूल जाय तो ?"

"जंगल भी है ग्राम भी है। सब बसा हुआ इलाका है।"

'जंगल में क्या जानवर है?'

"सुअर है, रीछ है कभी बाघ भी होता है, चीता बहुत है।"

"जानवर आदमी को नहीं मारता?"

"आदमी को कम छेड़ता है, जानवर पर पड़ता है।"

सिगरेट समाप्त कर, रामराम कह, बूढ़ा अपनी राह चल दिया और रामशरण उठकर पगडंडी पर चढ़ने लगा। मन में तर्क करता जा रहा था—अपने को राह भूलने का भय क्या? जहाँ पहुँच गये, वहीं अपने को जाना है; कोई नई जगह हो। कुछ दूर चढ़ वह उस टीले की चोटी पर पहुँच गया। अनेक टीलों की पीठों पर बैठे उस टीले की चोटी पर खड़े हो वह अपने आपको साधारण पृथ्वी से बहुत ऊँचे अनुभव कर रहा था। पीठ पीछे घूमकर देखा—सूर्य पश्चिम की ओर पहाड़ों की ऊँची दीवार की चोटी को छू रहा था। सूर्य अस्त हो जाय तो क्या है, सामने तोश और खशू के पेड़ों से छाया एक और छोटा सा टीला था और उसके पार ऊँचे पहाड़ की ढलवान पर छोटा सा गांव सूर्य की पीली पड़ती किरणों में चमक रहा था। यह रात वह उसी ग्राम में एक अनजान अतिथि के रूप में बितालेगा। कितनी ही कल्पनाओं से उसका मस्तिष्क भर रहा था।

जंगल से छाये टीले पर चढ़ते-चढ़ते सूर्य की किरणें लोप हो गईं और चढ़ाई अधिक आड़ी होने लगी। उसके सीने की धड़कन के प्रत्येक श्वास के साथ अंधेरा गहरा होता जा रहा था। झाड़ियों और वृक्षों के रंग बिरंगे पत्ते और आकार सब काजल के खिलौने बनते जा रहे थे। घने पेड़ों के नीचे घनी घास में पगडण्डी कभी की छिप चुकी थी। प्रकाश की आशा में आंखें ऊपर की ओर उठाने से सिर पर केवल काले पत्तों का घना छाजन दिखाई देता था। वह केवल दिशा के अनुमान से चल रहा था। टीले की चोटी अनुमान से बहुत दूर पीछे हटती चली जा रही थी। वह सामर्थ्य भर तेजी से चलने लगा। शरीर के रोम किसी भी आहट से बार-बार सिहर उठते—यदि इस समय कोई भालू या चीता आ जाय! मन कड़ा करने के लिये उसने निश्चय किया—जानवर के मुंह खोल कर झपटने पर बरलम उसके मुंह में गड़ा कर धंसा देगा। खशू के कंटीले पत्ते बार-बार उसके गालों और हाथों को खोंच रहे थे। चढ़ाई पर

उसके आगे बढ़ने वाले कदम के लिये जमीन मौजूद रहती थी परन्तु उतराई शुरू हो जाने पर आगे बढ़ना और भी कठिन हो गया। वह गिरते-गिरते बचा। गिरता तो जाने कहाँ पहुँचता ? अगला कदम बालिस्त भर नीचे पड़ेगा या गज भर या पचास हाथ। पांव उसके लड़खड़ाने लगे और चोटी का पसीना एड़ी तक बहने लगा।

उसने झोले में से टार्च निकाल ली और बल्लम के सहारे एक-एक कदम उतरने लगा। घने अंधेरे में ऐसी अजानी जगह आ मरने की अपनी मूर्खता पर वह अपने आपको धिक्कारने लगा। पल पल पर रीछ और चीते का ख्याल आ रहा था। ऐसे समय यदि जानवर आ जाय तो कैसे टार्च सम्भाले और कैसे बल्लम थामकर उसका सामना करे ? सुना था, जंगली जानवर आदमी की आवाज से घबराते हैं। सोचा, जोर जोर से गाये परन्तु मुख से शब्द न निकल पाया। वह सोचने लगा—पहाड़ जैसी बुरी जगह और नहीं। देश देखना था तो कलकत्ता बम्बई जाता।

बिजली की बत्ती की गोल-गोल रोशनी में एक पगडण्डी उसका रास्ता काटती हुई दिखाई दी। अब तक वह यों ही भटक रहा था। वह उतराई की ओर चल पड़ा। एक घन्टे के करीब तेज चाल से चलने के बाद वह उस घने बन से बाहर निकल पाया। बन के बाहर अंधेरा उतना गहरा न था। आकाश में छाये उजले बादलों से कुछ प्रकाश भी आ रहा था। घड़ी देखी—साढ़े सात ही बजे थे। कुछ ही दूर आगे रोशनी के धब्बे जैसे दिखाई दिये, समझा गांव आ गया। वह धीमे-धीमे उसी ओर चलने लगा। भय और चाल की तेजी कम हुई तो पानी भरी पहाड़ी हवा शरीर में लगने से कंप-कंपी आने लगी। उसने कम्बल ओढ़ लिया और आने गांव की ओर बढ़ने लगा। अपरिचित सरल पहाड़ियों के घर रात बिताने की कल्पना फिर जागने लगी। गांव बहुत छोटा था यहीं दस बारह घर। मकान नीचे और छोटे; पहाड़ी मकानों की तरह दो मंजिले। पहली मंजिल नीचे और दबे हुये किवाड़ों की ऊंचाई तक। दूसरी मंजिल ढलुआ छत के कारण बन जाने वाली तिकोन में समाई हुई।

रामशरण पहले ही मकान के पास पहुंचा था कि एक कुत्ता गुर्रा कर भौंकने लगा फिर दूसरा और फिर बहुत से। कुत्तों के भौंकने से

रामशरण को भय न मालूम हुआ। कुत्ता मनुष्य की बस्ती का संकेत और मनुष्य का साथी है। कुत्तों को उसने पुचकारा तो परन्तु उनकी ओर बढ़ने का साहस न हुआ। दूर से ही उसने पुकारा—"कोई है? जरा देखना, मुसाफिर है।"

उसके तीन बार पुकारने पर मकान के ऊपर की मंजिल की खिड़की खुली। पहाड़ी बोली में आवाज आई—"कौन है इस समय?"

"मुसाफिर!"—रामशरण ने उत्तर दिया।

एक चिराग हाथ की ओट में खिड़की से बाहर निकला और उसके पीछे एक चेहरा दिखाई दिया। समीप के दो और मकानों की ऊपर की खिड़कियों से भी पुकार सुनाई दी—"कौन है इस समय? कैसा मुसाफिर!"

चिराग के साथ खिड़की से बाहर निकलने वाले चेहरे ने दोहराया—"कैसा मुसाफिर, किस गांव से आया, कहाँ जाना है?"—समीप के मकानों से दो आदमी किवाड़ खोलकर बाहर निकल आये।

"शिमले से आया हूँ; ऐसे घूमने सैर करने के लिये"—रामशरण ने उत्तर दिया।

बाहर निकल आया आदमी चिराग लेकर खिड़की से बात करने वाले आदमी की ओर देख कर बोला—"बदमाश है!" और रामशरण की ओर घूम उसने धमकी के स्वर में कहा—"चले जाओ जी! यहाँ कोई दुकान सराय नहीं है। बदमाश! चोर!......आये सैर करने वाले! भाग जाओ!"

रामशरण के पांव तले से जमीन निकल गई। पीछे छूटा घना बन, रीछ, चीते और ऊपर उमड़ते ओला भरे बादल सब एक साथ याद आ गये। पल भर वह चुपचाप उन लोगों की ओर देखता रहा और फिर कलेजा कड़ा कर, पिघले गले से बोला—"सड़क से भटका परदेशी हूँ, रात काटने कोई जगह दे दो; गरीब पर मेहरबानी होगी।"

खिड़की से झांकने वाला आदमी नीचे उतर आया और उसके पीछे तीसरा आदमी भी समीप आ गया था। उसकी बगल में हाथ भर लम्बा दाव दिखाई दे रहा था जिससे पहाड़ी लोग बकरे का सिर

और पेड़ की मोटी डाल एक ही हाथ में काट कर फेंक देते हैं।

पहले आदमी से भी अधिक कठोर और क्रोध के स्वर में वह बोला—"निकल जा यहाँ से नहीं तो अभी काट डालूँगा"—बगल का दाव हाथ में ले उसने उसी रास्ते की ओर संकेत किया जिधर से रामशरण आया था—"चल पीछे।"

कुत्ते अपने मालिकों का भाव जान जोर से लपके। रामशरण पीछे हट गया। एक पहाड़ी ने कुत्तों को रोक लिया। दो आदमी उसे और नीचे के देस के आदमियों को गाली देते हुये उसे गांव से परे जंगल की ओर खदेड़ते हुये ले चले। रामशरण गिड़गिड़ा कर जंगल के भय और बरसने के लिये तैयार बादल की ओर संकेत कर शरण की प्रार्थना करता रहा परन्तु वे लोग कुछ सुनने के लिये तैयार न थे। उसे गांव से सौ कदम पीछे हटा, दाव दिखाकर उन्होंने ताकीद की—"अगर इससे आगे कदम बढ़ाया तो काट कर कुत्तों को खिला-देंगे।"—और वे लोग लौट गये।

बन में लौटकर रामशरण कहाँ जाता? जंगली जानवरों से रक्षा पाने के लिये वह बस्ती के जितने समीप सम्भव था एक अखरोट के पेड़ के नीचे, कम्बल में शरीर को लपेट कर, पेड़ के तने के सहारे बैठ गया। टार्च और कम्बल उसने सम्भाल कर तैयारी से रख लिया। कुछ देर बाद टप-टप बूँदें पड़ने लगीं और हवा का ज़ोर बढ़ गया। भूख और थकान से रामशरण का सिर दरद करने लगा, सर्दी से दांत बजने लगे। ज्यों ज्यों जाड़ा अधिक लग रहा था सिर का दरद बढ़ता जा रहा था।

उसने अपना सिर और शरीर कस कर कम्बल में लपेट लिया। उसे अपनी मूर्खता पर रुलाई आने लगी—कब दिन निकले और वह सड़क पर पहुँच शिमले की ओर चल दे। जंगल की ओर से अजीब सी आवाज आई। उसके उत्तर में गांव के कुत्ते जोर शोर से भौंकने लगे। रामशरण का कलेजा मुंह को आने लगा। समय बीतता न जान पड़ता था। कम्बल के भीतर कलाई की घड़ी पर टार्च रख, रोशनी कर समय देखा, केवल दस ही बजे थे। वह और भी निराश हो गया।—सवेरा होने तक वह शायद ही बच पावेगा। सिर के दरद की ओर से ध्यान हटाने के लिये वह घुटने पर सिर टिका सांसें गिनने लगा।

'तीन सौ ग्यारह, तीन सौ बारह'—वह अपने सांस गिन रहा था। जान पड़ा कोई उसके कंधों को दबा रहा है और कम्बल खींच रहा है '......रीछ! बाघ!' वह भय से और भी दब गया। मुंह उघाड़ते ही जानवर उसे नोंच लेगा...मुंह यों ढबका कर उसने सख्त भूल की। मुंह न उघाड़ने से ही क्या जानवर छोड़ देगा। कलेजा उसका जोर से धड़क रहा था। सोचा—झपाटे से कम्बल उघाड़, टार्च जला कर जानवर को चौंधिया दे और बल्लम से हमला करे। सांस रोके वह टार्च का बटन टटोलने लगा।

रामशरण उछल कर कम्बल फेंक देने को ही था कि कान में आवाज पड़ी—"ओ मुसाफरा।"

उसने ध्यान से सुना और बहुत धीमी सी पुकार जान पड़ी—"ओ परदेसिया, ओ मुसाफिरा!"—समझा कोई आदमी है! मनुष्य है तो उससे बात कर वह अपनी जान बचा सकेगा—गिड़गिड़ायेगा। बल्लम नहीं, आंसू ही उसे बचा सकेंगे। उसने कम्बल से मुंह निकाला।

"उठ, आजा!......घर में आजा!"—रामशरण सामने खड़े मनुष्य को देखता रह गया, जैसे समझ नहीं पाया।

"यहाँ सर्दी में मर जायगा। देख, अम्बर (आकाश) में पानी कैसे शोर का चढ़ रहा है।" एक लम्बी सांस रामशरण ने ली और बुलाने वाले के पीछे चल पड़ा।

मकान के किवाड़ बिना आहट खोलते हुये उस आदमी ने धीमे स्वर में कहा—"खटका मत करना।" रामशरण को भीतर ले किवाड़ मूंद उसने किवाड़ पर खटका लगा दिया। कोठरी की छत का एक भाग खुला था और ऊपर से आते धुंधले प्रकाश में वहाँ कच्चा जीना दिखाई दे रहा था। ऊपर से आते प्रकाश की ओर मुख उठा आदमी ने कुछ बोला, उसका उत्तर आया। आदमी ने फिर कुछ कहा और फिर उत्तर आया। रामशरण केवल इतना समझ पाया कि आदमी ने पहली दफे पाहुने और आग की बात और दूसरी दफे खाट की बात कही।

कुछ ही देर में एक बड़ी सी लड़की दोनों हाथों में मिट्टी की परात

जैसी अंगीठी थामे जीने से उतरी। अंगीठी में बहुत से अंगारे थे और उनकी झलक में लड़की का चेहरा उजाले में रखे 'गोल्डन' सेब की तरह दमक रहा था। लड़की ने अंगीठी दीवार से सटी खाट के समीप रख दी और रामशरण को संम्बोधन किया—"पाहुने आग के पास बैठो, जाड़ा है।"

रामशरण के जबड़े अभी तक सर्दी से जकड़े हुये थे और रह-रह कर शरीर पर फुरेरी दौड़ जाती थी। कुछ संकोच उसे हुआ परन्तु वह आग के सामने खाट पर बैठ गया। उसे साथ लाने वाला आदमी भी जमीन पर आग के पास बैठ गया और अपनी जेब टटोलकर उसने एक पोटली निकाली। लड़की एक छोटी सी चिलम ले आई। आदमी धीमे-धीमे लड़की से बातें करता हुआ चिलम भरने लगा—"पड़ोसी बहुत खराब हैं। कोई देख तो नहीं रहा था?......तूने झांका था?......यह देस के आदमी बड़े बदमाश होते हैं। रखेड़ी गांव में रत्तू की घर वाली को एक पंजाबी भगा ले गया था न! इन लोगों को घर में कोई पांव कैसे रखने दे? रत्तू और मशीया बागी तक ढूंढने गये मिला नहीं। मिलता तो (उसने गाली दी)......के टुकड़े कर देते और (उसने भागी हुई औरत को गाली दी)......की नाक काट लेते।......देस में लोग बड़े बदमाश होते हैं। इस गांव के लोग बड़े जालिम हैं किसी ने देखा तो नहीं। लड़की बाप की बात पर हुँकारा भरती जा रही थी। उसने रामशरण के पांव को हाथों में लेने का यत्न किया। रामशरण सहम गया।

"हां-हां आग पर सेक दो पांव"—लड़की का बाप बोला। रामशरण ने बाधा नहीं दी। लड़की उसके दांये और बांये पांवों को हाथ में ले बारी बारी से सेकने लगी। शीघ्र ही रामशरण का जाड़ा मिट गया।

कुछ देर में जीने से एक स्त्री उतरी। उसके एक हाथ में जल का लोटा और दूसरे हाथ में छोटी थाली थी। थाली में रखी मकई की दोज रोटी से भाप उठ रही थी। उसकी सोंधी महक कोठरी भर में फैल गई। थाली में कुछ भीजा हुआ गुड़ और बहुत सा मखन रखा था। लड़की ने दीवार के सहारे रखा चटाई का बैठन अंगीठी के समीप बिछा दिया। स्त्री ने जल का लोटा और थाली बैठन के समीप रख, मुस्करा कर कोमल स्वर में कहा—"आओ पाहुने जी!"

रामशरण ने मर्द की ओर देख अपना माथा छू कर कहा—"बहुत दरद हो रहा है, खाया नहीं जायगा।"

"हां"--मर्द ने हामी भरी—"जाड़े से और चलने की थकावट से होगा। नीचे देस के आदमी बहुत कच्चे होते हैं।" हाथ का चिलम वह सुलगा चुका था। चिलम रामशरण की ओर बढ़ाकर बोला—"लो, दो दम लो! ठीक हो जायेगा।"

चिलम पीने का अभ्यास रामशरण को न था। उसने इनकार कर दिया। मर्द ने अधिकार के स्वर में आग्रह किया—"पियो-पियो, खून में गरमी आयेगी, तबीयत ठीक होगी!" बेबसी में रामशरण ने चिलम ले दो सांस खींच लिये। सिर चकरा कर दिल घिर सा गया और सिर दरद की बात भूल सी गई। इस बीच में लड़की की मां फिर ऊपर चली गई थी! लौटी तो एक कटोरे में दूध लिये थी और दूसरे हाथ की हथेली पर चुटकी भर सोंठ। रामशरण पर ममता भरी दृष्टि डाल, मुस्कान से कोमल स्वर में वह बोली—"पाहुने जी, यह फांकलो सर्दी मिट जायेगी।" रामशरण जैसे चिलम पीने से इनकार न कर सका था वैसे ही सौंठ फांक कर दूध का कटोरा भी उसने पी लिया।

रामशरण को दूध पिलाकर लड़की की मां उससे रोटी खाने का आग्रह कर रही थी। अनिच्छा और कठिनता से रामशरण एक एक टुकड़ा मुख में डाल चबा कर निगलने का यत्न कर रहा था। लड़की का बाप समीप बैठा—देश के लोगों के बदमाश होने और अपने गांव के लोगों के जालिम होने की बात दोहराता जा रहा था कि कोई देख ले तो कैसी मुसीबत हो! देश के लोगों को तो दाव से दो टुकड़े कर कुत्तों को ही डाल दे तो सब से अच्छा। दरवाजे पर पाहुना आ जाय तो मुसीबत ही तो है। टिकाओ तो घर की औरत भगा ले जाय, गांव के लोग लड़ें। न टिकाओ तो धरम बिगाड़ो कि पाहुने को टिकाया नहीं .... स्त्री ममता और मुस्कान भरी निगाह से चौकसी पर बैठी थी कि पाहुना रोटी खाने में शिथिलता न कर पाये! और हाथ जोड़ कर कह रही थी—"धन भाग कि पाहुना-परमेश्वर द्वारे आये।"

बहुत यत्न करने पर भी रामशरण रोटी समाप्त नहीं कर सका। उसने हाथ खींच लिया। स्त्री ने उसके हाथ उसी थाली में धुला दिये

और बर्तन उठाकर चली गई। लड़की ने ऊनी कपड़ों का एक बिस्तर लाकर खाटपर डाल दिया। बिछावन के सिलवट यत्न से दूर कर दिये और रामशरण को सम्बोधन कर बोली—"लेटो पाहुने जी!"

थकावट से जर्जर होने पर भी रामशरण बैठन से उठ बिस्तर पर लेट न सका क्योंकि मर्द दीवार का सहारा लिये घुटने पर टिके पीतल के नारियल को गुड़गुड़ाते हुये रामशरण से शिमले के बाजार में गुड़, चीनी, नमक और बीथू के भाव की बाबत बात कर रहा था। इन बातों से रामशरण का परिचय न था परन्तु पहले से ही संदिग्ध और बौखलाये हुये अपने मेजबान के प्रश्नों का उत्तर कैसे न देता? वह कुछ न कुछ कहता ही जा रहा था।

कुछ देर बाद लड़की और लड़की की मां फिर जीने से उतर आई। स्त्री ने आते ही उलाहने के ढंग से हाथ हिलाकर पति पर नाराजगी प्रकट की—"कैसे हो तुम? .....थके हुये पाहुने को आराम भी नहीं करने दोगे? पाहुने जी तुम बिस्तर पर लेटो!"—उसने रामशरण को सम्बोधन किया। उसके बिस्तर पर लेट जाने पर स्त्री उसके पैताने खाट के समीप जमीन पर बैठ उसके पाँव दबाने लगी।

रामशरण का सिर सहसा चक्कर खा गया। बिना अभ्यास के खींचे तम्बाकू के दम से वह चक्कर अधिक भयानक था। उसके पांव ऊपर खींच लिये परन्तु स्त्री भी पांवों के साथ खिंचकर उस पर झुक गई - "हाय क्यों पाहुने जी, क्या पाहुने के पांव नहीं दबाये जायेंगे।"

उसका मस्तिष्क कुछ स्थिर हुआ तो फिर सुनाई दिया—दीवार से पीठ टिकाये मर्द नारियल गुड़गुड़ाता हुआ फिर बड़बड़ा रहा था—'नीचे देस के लोग बदमाश हैं। गाँव के लोग जालिम हैं। ......देखेगा तो क्या कहेगा? दरवाजे आये पाहुने को न टिकाओ तो देवता रूठे ......!' और स्त्री कभी मुस्करा कर अपने पति की ओर देख कर कहती—'जाओ ऊपर जाकर लेटो न!' कभी रामशरण की ओर देख मुस्करा देती और बहुत मनोयोग से उसके पांव, पिंडलियां, जांघें कमर और पीठ दबा रही थी। रामशरण बेबस आंखें मूंदे लेटा रहा, गांव के बाहर हू हू करती सर्द हवा और बूंदों के बीच अखरोट के पेड़ के नीचे कम्बल में सिमिट कर बैठ रहने से भी अधिक परेशान।

उसे अनुभव हुआ कि बड़बड़ाने की आवाज़ नहीं सुनाई दे रही। ज़रा पलक उठा उसने देखा, मर्द चला गया था परन्तु स्त्री उसके चेहरे की ओर देख रही थी—"अब चंगे हो पाहुने जी ?" उसने पूछा और वह ज़मीन से खाट पर आ गई। रामशरण ने फिर पलकें मूंद लीं। पलकें मूंदे रहने पर उसे एक विचित्र सी गंध अनुभव हुई, घास की गंध, घी की गंध, पसीने की गंध, स्त्री की गंध ! पलकें मूंदे रहने पर भी उसे दिखाई दे रहा था—माथे पर रूमाल बांधे उस स्त्री का गोरा-गोरा, गोल-गोल चेहरा, लम्बी सीधी नाक से पीतल या सोने का लटका बुलाक पतले होठों पर झूमता हुआ—जैसे ओठों को ओट देकर बचाने के लिये लटका दिया गया हो······ और फिर हाथ भर का लम्बा दाव, वह मर्द दो टुकड़े कर कुत्तों को खिला देने की धमकी देता हुआ।

उस स्त्री का मुस्कराता हुआ चेहरा रामशरण की मुंदी पलकों के आगे नाच रहा था और कान सुन रहे थे—"अब चंगे हो पाहुने जी' ! नींद लाने के लिये उसके शरीर पर फिरते उस स्त्री के हाथ उसकी नींद को कोसों दूर भगाये थे। थकावट, नींद और खून की बढ़ती गरमी सिर दर्द बन रही थी। उसे अनुभव हो रहा था उसके शरीर पर उतना ही ज़ोर पड़ रहा है जितना स्कूल-कौलेज में रस्सा खींचने के मैच में पड़ता था - वह पीड़ा और उग्रता दोनों अनुभव कर रहा था।

झपकी आने पर सहसा किसी ने ठेल कर जगा दिया। स्वर वही पहिचाना हुआ कोमल था—"उठो पाहुने जी"···और मर्द के कठोर कण्ठ ने उस बात को पूरा किया—'दिन चढ़ने को हो रहा है। पड़ोसी बैलों को घास डालने के लिये उठते होंगे। इस बदमाश को गांव से निकाल आऊं! नहीं तो दाव से इसके दो टुकड़े कर खेत में डाल दूं कुत्तों के सामने······!"

स्त्री शहद और मक्खन चुपड़ी मक्का की एक बड़ी सी रोटी हथेली पर लिये थी—"पाहुने जी, दूर की राह में पानी पीने के लिये इसे रख लो।"

वह आदमी अंधेरे में आगे आगे जंगल की राह बढ़ता जा रहा

था और रामशरण ठोकर खाता हुआ उसके पीछे लड़खड़ाता जा रहा था। समीप की एक पगडण्डी से उसने रामशरण को सड़क पर पहुँचा दिया और बगल में दबे दाव को हाथ में ले दिखा रुद्र मुद्रा और कठोर स्वर में उसने धमकाया—"चला जा बदमाश यहाँ से! खबरदार किसी से कहा कि घर में टिकाया था—मैं बड़ा जालिम आदमी हूँ।...बोटी बोटी काट डालूंगा। "आ गया"—एक घृणित गाली देकर उसने कहा......'मेहमान बनकर, औरत चोरों के देश का बदमाश!'

वह आदमी तुरन्त लौट पड़ा। रामशरण दम लेने के लिये पलभर सड़क पर बैठ रात के विचित्र आतिथ्य की बात सोचता रहा॥

२

भवानी माता की जय—

बुढ़ापे में आकर मोरियल मिल के बड़े जमादार ठाकुर मितानसिंह का जीवन दो ही चीजों पर निर्भर हो गया। एक उनकी पूजा की पोटली जिसमें भवानी माता की मूर्ति और पूजा की सामग्री थी और दूसरी जीवित 'भवानी', उनकी बेटी।

बीस बरस पहले ठाकुर मितानसिंह ने संकट आने पर भवानी माता को गुहराया था। उस समय मोरियल मिल के बड़े जमादार बृन्दा ठाकुर अपनी नौकरी पर ही गंगा सिधार गये थे। लाखों-करोड़ों रुपये की मालियत की मिल की जमादारी मज़ाक नहीं। साहब लोग तो मिलों को काग़ज़ों पर ही देखते हैं लेकिन अगर मिलों से चोरी में एक-एक पेंच और एक-एक सूत जाने लगे तो काग़ज़ों पर सब जैसा का तैसा बने रहने पर भी मिल का कहीं पता भी न चले। इस सब की ज़िम्मेदारी रहती है, बड़े जमादार पर। इसी से बड़े जमादार का पद प्रायः पुश्तैनी होता है। सब दरबान, चौकीदार और जमादार बड़े-जमादार की जमानत पर ही मिल में भरती होते हैं। उनके ही चार्ज में बन्दूकें भी रहती हैं, बड़े-साहब भी बड़े-जमादार को जमादार साहब कहकर याद करते हैं। बड़े जमादार बड़े साहब और मैनेजर साहब के इलावा किसी को सलूट नहीं देते। दूसरे सब जमादार लोग बड़े-जमादार को मैनेजर और बड़े-साहब का सलूट देते हैं। जमादारों के क्वार्टरों में बड़े जमादार की खाट लगाने-उठाने, नल से पानी भरने, उनकी धोती कछार देने या रसोई के बर्तन मल देने के सब काम छोटे जमादार लोग कर देते हैं।

पुराने बड़े जमादार बृन्दा ठाकुर के गंगा सिधारने के समय मिल के बड़े-जमादार के उत्तराधिकार की समस्या पेश हो गई थी। बृन्दा ठाकुर के अपना कोई लड़का न था परन्तु रिश्ते का भतीजा हरनाम जमादारी की नौकरी पर मौजूद था। उसने बड़े जमादार की गद्दी का दावा बड़े साहब के सामने पेश किया। बृन्दा ठाकुर के खानदान और गाँव से चौदह आदमी मिल की नौकरी में थे। मिताल ठाकुर के यहाँ से बारह। बृन्दा ठाकुर का भतीजा हरनाम मिताल ठाकुर से उम्र में चौदह बरस छोटा था। मिताल ठाकुर ने बड़े-साहब के सामने जमीन पर पगड़ी रखकर कह दिया — हुजूर की नौकरी में बाल सफेद हो गये। गुलाम की वफादारी, नमक हलाली और कारगुजारी सरकार के सामने है। सरकार के हुकुम से कितनी दफे बदमाशों से लोहा लिया है। सरकार से कुछ छिपा नहीं है। लौंडे को सलूट नहीं दे सकता हूँ, चाहे नौकरी और सिर दोनों चले जायं। अपने क्वार्टर में लौट मिताल ने सिर माई भवानी मूर्ति के चरणों में रख दिया।

बड़े साहब ने दोनों पक्षों की नौकरी का अमालनामा (हिस्ट्री शीट) मंगाकर देखा और फैसला दिया कि अब ठाकुर मितालसिंह बड़े-जमादार होंगे और आइन्दा दोनों खानदानों में से जिसकी वफादारी और नमक हलाली बढ़कर होगी, उसी खानदान का बूढ़ा बड़ा-जमादार रहेगा।

जिस दिन मिताल को बड़े जमादार की पगड़ी का सुनहरी भब्बा मिला उसके दो दिन बाद गांव से आये आदमी ने खबर दी कि मिताल के छोटे भाई के यहां कन्या जन्मी है। मिताल की ठकुराइन ने एक लड़के और लड़की को जन्म दिया था। सन्तान न रही और ठकुराइन भी जवानी में ही चल बसीं। मिताल ने अपने से दस बरस छोटे भाई को ही पुत्र के स्थान पर समझ लिया था। जाने किस कर्म के अपराध से छोटे भाई के भी दो सन्तान होकर गुजर जाने के बाद फिर कुछ न हुआ। अब अपनी पूजा से प्रसन्न हो भवानी ने स्वयम् ही जन्म लिया। देवी के वरदान से प्राप्त कन्या का नाम रखा गया — भवानी।

लड़की अभी चार बरस की हो हुई थी कि गांव में इन्फ्लूएँजा का बुखार फैला और मिताल के छोटे भाई-बहू एक साथ चल बसे।

मितान भवानी को कानपुर ले आये। वह पालतू बंदर की तरह ताऊ और मातहत जमादारों के कंधों और सिर पर नाचती रहती। देखते देखते सियानी होने लगी। लोगों की नजरों में भवानी भले ही सियानी हो रही थी परन्तु ठाकुर मितानसिंह के लिये वह वैसी ही 'भानो' बनी थी। संकेत से लोगों ने सुझाया भी की बेटी से मोह बढ़ाना ठीक नहीं, पराया धन है। उसके तो केवल दान का ही पुण्य माँ बाप का है परन्तु मितान सुनकर भी न सुनते। उन्होंने वही किया जिसका मन में निश्चय किये बैठे थे।

मितान ठाकुर ने चिराग लेकर बीस गांव छाने तब कहीं उन्हें अपने मन का वर भवानी के लिये मिला। वह था - नरेला गांव के निरंजन ठाकुर का छोटा लड़का। निरंजन ठाकुर तीन भाई थे। घर की कुल जमीन थी नौ बीघा। सभी पल्टन में और दूसरी जगह नौकरी करते थे। निरंजन ठाकुर के पांच बेटे थे। इस तरह मितान ठाकुर की पसन्द का भवानी का वर भूरेसिंह केवल बारह बिसवा जमीन का उत्तराधिकारी था। भूरेसिंह गांव छोड़ मजदूरी की तलाश में कानपुर आ गया था और लोहे की मिल में पगार कर रहा था। भूरे को दामाद बना लेने के बाद ठाकुर मितानसिंह ने उसे मोरियल मिल की दरबानी में भरती करा लिया और बड़े साहब के सामने पेश कर कहा - यह हुजूर के गुलाम का लड़का है। मैं बूढ़ा हो गया हूँ। सरकार का नमक मेरी हड्डियों में समाया है। मेरे बाद यही मेरा बेटा हुजूर का नमक हलाल करेगा। मितान ठाकुर की पूजा से प्रसन्न माता भवानी का अवतार बेटी 'भवानी' उनके ही घर स्नेह के सिंहासन पर विराजे रही।

❀ ❀ ❀

ठाकुर मितानसिंह ने भागवत की कथा में सुना था कि कलिकाल में पाप बढ़कर जब कलियुग के चारों चरण पूरे हो जायंगे तभी कलंकी अवतार होकर पाप का नाश होगा। सो वह समय उनकी आंखों के सामने ही आ रहा था। धर्म और परलोक तो जैसे मिट ही गये। पाप का डर किसी को नहीं रहा। धर्म कर्म सब उलट गये। पढ़े लिखे कहलाने वाले लोग आकर मिल के फाटकों पर लेक्चर देते कि मालिक चोर है, वे नौकरों की-मजदूरों की कमाई चुराते हैं।

मिलें मजदूरों की मेहनत से बनी हैं। मिल के मुनाफे में उनका हिस्सा होना चाहिये। उनकी नौकरी की गारण्टी और बुढ़ापे के गुजारे का इन्तजाम होना चाहिये। मिल के मजदूर और नौकर कहने लगे-मालिक हमें नौकरी से बर्खास्त नहीं कर सकता। मिल हमारी है। मिल को हम चलाते हैं। हमारे बिना मालिक मिल चलाकर दिखायें? आये दिन हड़ताल और फिसाद लगा ही रहता। मजदूर तैश में आकर हमला कर सकते थे। ऐसे समय मिल के दरबानों और जमादारों की नमकहलाली और वफादारी का ही भरोसा था।

झगड़ा करना ही हो तो कारणों की क्या कमी—साल खतम होने को था। मैनेजर ने डेढ़-सौ आदमियों को बर्खास्तगी का नोटिस दे दिया। मजदूरों की तरफ से एलान हुआ कि यह आदमी बर्खास्त नहीं होने चाहिये। इन आदमियों का तरक्की का हक आगया है इसलिये इन्हें बर्खास्त करके, कम मजदूरी पर नये मजदूर रखे जायँगे। मिल वाले कई बार ऐसा कर चुके हैं। मिल मालिकों ने मजदूरों की इस बात की परवाह न की। दस दिन बाद हड़ताल होने का नोटिस दे दिया गया।

मिल के भीतर मजदूरों को हड़ताल करने का उपदेश देने के लिये रोज ही पर्चे बंटते थे और सुबह, शाम मजदूरों के नेता मिल के दरवाजे के बाहर हड़ताल करने का लेक्चर पाली (ड्यूटी) पर आने वाले और छुट्टी होने पर मिल से निकलने वाले मजदूरों को देते थे। मैनेजर साहब मिल में बटने वाले इन पर्चों से झल्ला गये। इन्होंने बड़े जमादार से जवाब तलब किया कि जब मिल में आते जाते समय सब मजदूरों की तलाशी होती है तो यह पर्चे मिल में पहुँच कैसे जाते हैं?

ठाकुर मिलानसिंह स्वयम् इस शरारत से परेशान थे। उन्होंने जमादारों को बुलाकर हुकुम सुनाया—जिस जमादार की ड्यूटी में पर्चा भीतर जायगा, वह बर्खास्त किया जायगा।

फिर भी रात की पाली में मिल में पर्चे बंटे। ठाकुर मिलानसिंह के सिर में खून चढ़ गया। उन्होंने कहा—मिल में ऐसे नमक हरामों की जरूरत नहीं है। पर्चे विजयसिंह और जालमन की ड्यूटी में, उनके दरवाजों से जाने वाले मजदूरों के पास पकड़े गये थे। ठाकुर मिलान

सिंह ने दोनों जमादारों की वर्दी उतरवा ली और बोरिया-बिस्तर उठा उन्हें मिल के फाटक से बाहर कर देने का हुकुम दे दिया। बहुत दिन से उन्हें सन्देह था, यह सब शरारत उनकी सफेद होती दाढ़ी में कालिख पोतने के लिये वृन्दा ठाकुर के भतीजे हरनाम के गिरोह की चाल है। वे लोग भूरे से जलते हैं। ठाकुर मितानसिंह ने चरन जमादार को हुक्म दे भूरे को मैनेजर साहब के सामने बुलवाया और नमक हराम जमादारों की तलाशी लेकर, उनका बोरिया-बिस्तर लदवाकर मिल से बाहर कर देने का उत्तरदायित्व भूरे पर सौंप दिया कि किसी किस्म की रियायत ऐसे बदमाशों के साथ न हो। ठाकुर यह भी कहना न भूले कि जब तक और मुनासिब आदमी नहीं मिलते, भूरे उन जमादारों की और अपनी डबल ड्यूटी दे।

भूरे हुकुम सुनकर खड़ा ही रह गया।

"खड़े-खड़े क्या देखते हो जी ?" मैनेजर ने धमका कर पूछा।

"हाँ जाओ !"— ठाकुर मितानसिंह ने भी अफसराना लहजे में मैनेजर साहब की ताइद की।

भूरे खड़ा रहा और फिर मैनेजर साहब को प्रश्नात्मक ढङ्ग से अपनी ओर घूरते देख उसने कुछ हकलाते हुए कहा —"हुजूर यह हमसे न होगा। हुजूर के जैसे वे नौकर, वैसे हम नौकर—हम किसी के पेट पर कैसे लात मारें हुजूर ?"

मैनेजर साहब तो चुप ही रह गये परन्तु ठाकुर मितान क्रोध में काँप उठे - 'जवाब देता है बदमाश !" आवेश में उनका गला रुँध गया। मैनेजर अब भी चुप थे। अपने आपको वश में कर ठाकुर मितान ने कहा — 'पहले तुम ही निकलो ! उठाओ अपना डेराडण्डा।' काँपते हुये हाथ में हिलते हुये बेंत से उन्होंने मिल से बाहर की ओर इशारा कर हुक्म दिया।

भूरे ने एड़ी से एड़ी ठोंक कर एक सलूट दी और चल पड़ा। मिल में नौकरों और जमादारों पर सन्नाटा सा छा गया। पन्द्रह मिनट भी न बीते थे कि कन्धे पर एक थैला और कम्बल रक्खे, कांख में जमादार की वर्दी दबाये भूरे क्वार्टरों की ओर से आता दिखाई दिया और उसके पीछे-पीछे घूँघट काढ़े भगवती चली आ रही थी।

भूरे ने वर्दी बड़े जमादार के पाँव के सामने रख दी और बिना किसी संकोच के बोला—"सरकार तनख्वाह के लिये कब हाजिर होऊँ ? कायदे से एक महीने की तनख्वाह का हकदार हूँ।"

मितानसिंह को यों ही अपने आप को सम्भालना कठिन हो रहा था। भूरे की यह कानून-वार्ता उनके क्रोध की ज्वाला पर घी पड़ने के समान हुई। बजली गाली उनके मुँह से निकल गई—

"हट जा नजरों के सामने से नहीं तो अभी गोली मार दूँगा।" वे सचमुच फाटक पर बन्दूक लिए खड़े सन्तरी से बन्दूक छीनने के लिए उस ओर को लपके। मैनेजर साहब, कई क्लर्कों और मजदूरों ने बुढ़ापे के आवेश से थर-थर काँपते उनके शरीर को थाम लिया और फाटक में पड़ी बेंच पर बैठा दिया।

भूरे चुपचाप फाटक से बाहर हो गया। भवानी अब तक बाबा की पीठ पीछे खड़ी थी। भूरे को फाटक से बाहर होते देख वह भी उसके पीछे चली। यह देख ठाकुर फिर उछल कर खड़े हो गये—"तू कहाँ जा रही है?...नहीं तू नहीं जायगी। ऐसे नमकहराम, बेधर्मी के साथ तू नहीं जा सकती। तू आज से राँड़ हो गई। लौट जा। नहीं तो आज जमीन खून से तर हो जायगी।"

भवानी घूँघट में सिर झुकाए खड़ी रह गई। भूरे ने दो पल भवानी की ओर देखा और उसे आते न देख चल पड़ा। मितानसिंह ने पागल की तरह बेटी का हाथ थाम लिया और उसे खींचते हुए अपने क्वार्टर की ओर ले गये।

मितानसिंह का चेहरा और आँखें सुर्ख हो रहे थे जैसे कोई गहरा नशा खा गये हों। रात को भी उन्होंने आराम के लिये वर्दी नहीं उतारी और बेंत हाथ में लिये लगातार फाटक और मिल का चक्कर लगाते रहे। भोजन की बात वे भूल ही गये।

भवानी को जैसे और जिस जगह लाकर बाबा ने बैठा दिया था, वह उसी जगह वैसे ही निर्जीव पदार्थ की तरह पड़ी रही। बाबा भी क्वार्टर को न लौटे और वह भी उस स्थान से न हिली।

अब तक हड़ताल केवल भमकी ही जान पड़ती थी परन्तु तीन जमादारों—भूरे, लालमन और विजयसिंह की मिल से बर्खास्तगी के

सवाल पर हड़ताल हो ही गई। दूसरे ही दिन से मजदूर सभा ने ओरियन्ट मिल में असामियों की नाजायज बर्खास्तगी के विरोध में हड़ताल की घोषणा कर दी। मिल के फाटक के बाहर मजदूर सभा के लोग आकर लेक्चर देने लगे—"दुनियाँ भर के मेहनत करने वालों को इस घटना से शिक्षा लेनी चाहिये। मजदूर और मेहनत करने वाले लोग समाज की मशीन में चाहे जिस पुर्जे का काम करें, वे चाहे मजदूर बन कर कपड़ा बुनें, या इंजन चलायें, चाहे बन्दूक लेकर सिपाही बनें या लाठी लेकर चौकीदारी करें वे सब एक हैं और पूँजीपति मालिक इस सामाजिक मशीन का रस चूस लेने वाला राक्षस है। मजदूर अपने सिपाही और दरबान भाइयों पर होने वाले जुल्म का विरोध करके समाज को दिखा देना चाहते हैं कि सब शोषितों का हित एक है। मिलों में दरबानी, पुलिस और फौज में सिपाहीगिरी करने वाले लोगों को हम दिखा देना चाहते हैं कि समाज के दो भाग हैं—एक लुटेरे पूँजीपतियों और मालिकों का और दूसरा मेहनत करने वालों का। पूँजीपति राक्षस अपने इन्तजाम की कुल्हाड़ी में जिस लकड़ी का बेंटा डालकर समाज को काटता है, उस बेंटे की लकड़ी समाज के ही वृक्ष का भाग है, पूँजीपति के शरीर का नहीं। जब तक हमारे तीनों दरबान भाई, जिन्होंने मजदूरों पर नाजायज जुल्म करने से इनकार किया है, बहाल न कर दिये जायेंगे, ओरियन्ट मिल की हड़ताल बन्द न होगी, चाहे हजारों मजदूर भूखों मर जाँय।"

हड़ताल के जवाब में, मजदूरों की इस शरारत के जवाब में, मिल ने स्वयम ही मिल बन्द (लाक आउट) करने का एलान कर दिया। मिल का फाटक बन्द था और ठाकुर मितानसिंह स्वयम वर्दी पहने बेंच पर बैठे थे। उन्हें अब किसी पर विश्वास न रहा था। वे निश्चय करके बैठे थे यदि भीड़ मिल पर चढ़ दौड़ेगी तो वे अकेले ही बन्दूक लेकर सामना करेंगे चाहे हजार आदमी का खून हो जाय। उनकी लाश पर पांव रख कर ही चाहे कोई मिल में कदम रख सके। मैनेजर साहब दफ्तर में बैठे घबरा रहे थे कि इस का असर दूसरे मजदूरों और अहलकारों पर क्या होगा ?

शहर से खबर आयी कि मजदूरों ने एक बड़ा भारी जुलूस

निकाला है। जुलूस में सब मिलों के मजदूर शामिल थे और तीनों बर्खास्त बाहरों को गले में हार पहना कर जुलूस के आगे गवारी पर घुमाया गया। दूसरी मिलों के मजदूर भी सहानुभूति में हड़ताल की बातें कर रहे थे दूसरी मिलों से लगातार फोन आ रहे थे कि मोरियल मिल में क्या फैसला हुआ ? कुछ फैसला होना चाहिये नहीं तो बखेड़ा बहुत बढ़ने की आशंका है। हरनाम के गांव का सिपाही सब को सुना कर कह रहा था—"हम तो पहले ही जानते थे भूरे सभा के बदमाशों का आदमी था। लोहा मिल में काम करता था तब भी सभा में जाता था। उसी ने विजय और लालमन को बहकाया। बड़े जमादार के डर से हम बोले नहीं कि हमारी कौन सुनेगा।"

कोतवाल साहब ने मैनेजर साहब को फोन किया कि मजदूर सभा के लोग भूरे को लेकर कोतवाली में रपट लिखाने आये हैं कि मिल वालों ने भूरे जमादार की औरत भवानी को जबरन मिल में रोक रखा है। कहिये क्या किया जाय ? मैनेजर साहब फोन पर हँस दिये—"अरे कोतवाल साहब ऐसा मजाक करोगे ? क्या दुनिया उजड़ गई है कि मिलवाले अब मजदूरनियों पर नियत गिरायेंगे ! आपने आदमी नहीं भेजा। आपकी चीज तो रखी है। .. कह दीजिये न भूरे से कि औरत अपने बाप के घर है; जाती है तो ले जाय। वह साले हिजड़े के साथ न जाय तो क्या मिल वाले क्या करें ? खूब कही कोतवाल साहब ! मिल के दरवाजे पर शरारत का अंदेशा है। एक अच्छी सी पिकेट भिजवा देना।"

× × ×

एक हजार मजदूरों की भीड़ मिल के दरवाजे के सामने भूरे की औरत भवानी को लेने के लिये खड़ी थी और नारे लगा रही थी—"नाजायज बर्खास्ती नहीं होगी। बर्खास्त जमादार बहाल करो ! जमादार की औरत कैद से छोड़ी जाय ! इन्कलाब जिन्दाबाद !'

मजदूरों की ओर से पढ़े लिखे पंचों और मैनेजर साहब में बातचीत हुई। मैनेजर साहब बोले— 'भवानी अपने बाप का घर छोड़ कर नहीं जाना चाहती तो मैं क्या जबरदस्ती करूँ ? इसे ही आप आजादी कहते हैं।'

ठाकुर मिताननसिंह भी समीप खड़े सुन रहे थे। बुढ़ापे के कारण झुर्रियाँ पड़ा उनका चेहरा और आँखें क्रोध से तमतमा रही थीं। उन्हें सुना कर मैनेजर साहब कहते गये—"ठाकुर की बेटी है। उसके बाप ने मिल का नमक खाया है। उसका आदमी नमकहरामी कर अपना मुँह काला करे तो लड़की अपना धर्म कैसे छोड़ दे? ऐसे आदमी के साथ जाकर वह बाप का नाम डुबो दे?"

मजदूरों के पंच इस बात पर बिगड़ उठे—'नमकहरामी कौन करता है। यह हम जानते हैं। नमकहरामी वह करता है जो रोटी के टुकड़े के लिये अपनी बिरादरी से दगा करता है। भवानी को फाटक पर लाया जाय। अगर वह भूरे के साथ नहीं जाना चाहती तो हम कुछ नहीं कहेंगे लेकिन उसे जबरन कैद नहीं करने देंगे। वह अपने मर्द के साथ जा रही थी! उसे जबरन रोका गया है।"

मैनेजर ने परेशानी में मेज पर हाथ पटक कर कहा "अरे भाई वह भूरे का नाम सुन वह घर से बाहर ही नहीं निकलती उसे क्या जबरदस्ती बांधकर ले आऊँ?'

मजदूर-पंचों को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कहा—"यह सब कुछ नहीं। औरत को आपने कैद कर रखा है। पुलिस हमारी मदद नहीं करेगी और आप लोग ज्यादती करेंगे तो हम मिल की ईंट से ईंट बजा देंगे चाहे हजार आदमी की लाशें गिर जायँ। भवानी को फाटक पर लाना ही होगा।" ठाकुर मितानसिंह ने यह धमकी सुनी और लाल आँखों से मजदूर-पंचों की ओर देख क्रोध में जबड़े पीस लिये।

मजदूर पंच बाहर चले गये। मजदूरों के एक हजार गलों से इन्कलाब जिन्दाबाद के नारे गूँजने लगा।

मैनेजर साहब ने ठाकुर मितानसिंह को समझाया बिटिया को क्यों रोके हो? झगड़े से क्या फायदा?......'वह अपने मर्द के पास जाना चाहती है तो जाने दो।"

ठाकुर ने सिर हिला दिया। आवेश से रुंधे गले से कठिनता से शब्द निकले—'हजूर, ऐसा हुकुम न दीजिये। यह इज्जत का सवाल है। मालिकों की और हमारी इज्जत का मामला है। नमक-

हराम मर्द के साथ हमारी बेटी नहीं जायगी। वह रांड हो गई।"

मिल के फाटक का शोर भीतर पहुँचा। जमादारों के क्वार्टरों में सनसनी फैल गई कि भूरे भीड़ लेकर भवानी को लेने आया है और मिल पर हमला हो रहा है। पुलिस बंदूकें लेकर आई है। भवानी ने सुना, वह उठी और लपकती हुई फ़ाटक की ओर चलदी। ज्यों ज्यों वह फाटक के समीप पहुँच रही थी हल्ला बढ़ता आ रहा था। गोली चलने की आवाज भी सुनाई दी। भवानी फाटक की ओर दौड़ पड़ी।

पुलिस के आधे सिपाही बाहर थे और कुछ सींखचेदार फाटक के भीतर। भीड़ को फाटक से पीछे हट जाने के लिये कई बार चेतावनी दी गई परन्तु कुछ असर न हुआ। दरोगा ने सिपाहियों को हवा में गोली छोड़ कर भीड़ को धमकाने के लिये कहा। गोली की आवाज सुन भूरे, लालमन और दूसरे मजदूर-पंच सीने तानकर आगे बढ़ आये। सामने से चली आ रही भवानी ने यह देखा। वह और भी तेजी से फाटक की ओर लपकी। पुलिस ने फिर एक बार हवा में गोली चलाई परन्तु भीड़ हटी नहीं। ठाकुर मिलानसिंह बन्द फाटक के सींखचों से यह सब देख रहे थे। पुलिस की कायरता उन्हें असह्य हो रही थी।

फाटक के सींखचों में से भवानी को अपनी ओर बढ़ते देख भीड़ फाटक पर पिल पड़ी। भवानी सींखचों के इस पार थी और दूसरी ओर से भीड़ फाटक को अपने बोझ से हिलाये दे रही थी। फाटक के लोहे के छड़ [illegible] की तरह कांप-कांप कर झन-झना रहे थे। बाहर पुलिस का कहीं पता न चलता था। फाटक [illegible] पड़ा चाहता था।

अवस्था संकटमय देख दरोगा ने फाटक के भीतर के सिपाहियों को भीड़ पर गोली चलाने का हुक्म दिया। पटापट गोली चलने लगी। भवानी गोली चलाती पुलिस के पीछे से निकल फाटक की ओर बढ़ गई। वह पुलिस और भीड़ के बीच फाटक के समीप थी। भीड़ पर चलाई गई गोली उसकी पीठ में लगी और वह गिर पड़ी।

पांच हजार से अधिक मजदूर मिल के बाहर सड़क पर बिछे हुये थे। उनका प्रण था कि वे भवानी का शव लिये बिना मिल के

फाटक से न हटेंगे। भीड़ में निरंतर नारे लग रहे थे — "इन्कलाब जिन्दाबाद! भवानी की लाश लेंगे! माता भवानी की जय! खून का बदला खून से लेंगे! पूंजीपतियों के टुकड़ाखोरों का नाश हो! मालिकों के कुत्तों का नाश हो! लड़कर लेंगे स्वराज! इन्कलाब जिन्दाबाद! भवानी माता की जय!"

पुलिस भवानी की लाश के बारे में कानूनी कार्रवाई कर रही थी। ठाकुर सितानसिंह को जबरदस्ती पकड़ कर उनके क्वार्टर में खाट पर लिटा दिया गया था परन्तु वे फिर उठ आये। उनकी आँखें लाल और खुश्क थीं। पोपले जबड़े निरन्तर चल रहे थे और गले में रस्सियों की तरह उठ आई नसें खिंच खिंच कर रह जाती थीं, जैसे वे कुछ निगल रहे हों।

दरोगा ने फोन पर कलक्टर से बात की और भवानी का शव मजदूरों को सौंप दिया गया। मिल के सामने सड़क पर ही बहुत बड़ा विमान बहुत सी तैयारी से बनाया गया। बहुत से फूल और लाल झण्डों से सजे विमान को लेकर जुलूस चला। घड़ियालों और शंखों की गूञ्ज के साथ भवानी माता की जय और इन्कलाब जिन्दाबाद के नारे और भी जोर से लगने लगे। जुलूस के पीछे-पीछे, ठाकुर सितानसिंह भी लड़खड़ाते चले आ रहे थे। पूंजीवाद के टुकड़ाखोरों और मालिकों के नाश के नारे भी लगातार लग रहे थे।

गङ्गा जी के किनारे बहुत बड़ी चिता पर फूलों और लाल झन्डों से सजा विमान रख दिया गया। एक मजदूर-पंच लेक्चर दे रहे थे — "जिस धर्म का पालन बहिन भवानी ने किया है वही हम सब हिन्दुस्तानियों का धर्म है। बहिन भवानी ने हमें सिखाया है कि हम किसी जुल्म के सामने सिर न झुकायें चाहे प्राण देना पड़े। भूरे ने धर्म को पहचाना कि उसका कर्तव्य उस मेहनत करने वाली श्रेणी की सहायता करना है जिस श्रेणी में उसके बाप-दादा थे, जिस श्रेणी में देश के करोड़ों भाई हैं। अपनी रोटी के लिये अपने करोड़ों भाइयों के पेट पर लात मारना उसने स्वीकार न किया। उसने कुत्ते को बाँध रखनेवाली मालिक की गुलामी की जंजीर, रोटी के टुकड़े की जंजीर तोड़ दी और धर्म और न्याय की रक्षा के लिये अपने भाइयों के साथ आ खड़ा हुआ। उससे बढ़कर अत्याचार न सहने के धर्म

का पालन किया बहिन भवानी ने। इसलिये हम सब शोषित भाई भवानी को माता कह कर प्रणाम करते हैं। सब बोलो—"भवानी माता की जय !"

मजदूर-पंच की आखों से बहते आंसू धूप में चमक रहे थे। वैसी ही आँसुओं की धारायें भीड़ के हजारों आदमियों के चेहरों पर चमक रही थी ! फिर नारों की आकाश भेदी गूंज में भूरे के हाथ से चिता में आग लगवा दी गई।

भीड़ के पीछे से आवाजें सुनाई दी—"मालिकों के कुत्तों का नाश हो, पूंजीपतियों के टुकड़ाखोरों का नाश हो।" घूम कर लोगों ने देखा बड़े जमादार की बर्दी पहने ठाकुर मितानसिंह चिता की ओर बढ़ रहे हैं। मालिकों के कुत्तों के नाश के नारे और भी ऊँचे लगने लगे। पंचों ने आगे बढ़कर भीड़ को चुप कराया। मितानसिंह चुपचाप चिता के समीप पहुँचे। हाथ जोड़ कर उन्होंने तीन बेर चिता की प्रदक्षिणा की और फिर पागलों की तरह चिता की ओर लपके। भूरे और दूसरे मजदूरों ने दौड़ कर उन्हें पकड़ लिया। मितानसिंह सिर पीट कर जोर से रो दिये।

नारे सब बन्द हो गये। एक सन्नाटा छा गया और भीड़ फिर से रोने लगी। मितानसिंह चिता पर चढ़ जाने की जिद्द कर रहे थे और लोग उन्हें रोक कर ढाढ़स दे रहे थे। आखिर उन्होंने अपनी झब्बेदार पगड़ी उतार कर चिता पर फेंक दी।

'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे से फिर आकाश गूंज उठा। मितानसिंह जमादारी की सब बर्दी उतार-उतार कर चिता पर फेंकने लगे। भीड़ में से किसी आदमी का दिया अंगोछा उनकी कमर पर लिपटा था।

अब और ही नारे लग रहे थे—"भवानी माता की जय, मितान-सिंह की जय ! पूंजीवाद का नाश हो ! लड़ कर लेंगे स्वराज ! इन्कलाब जिन्दाबाद !"

जन समूह में मितानसिंह घिर कर ऐसे हो रहे थे जैसे बरसों के बिछोड़े के बाद मिलने पर सम्बन्धियों के दिल भर आते हैं।

३

शिव पार्वती—

मूर्तिकार अमेघ ने उत्कल देश से आकर चोलवंश के महाप्रतापी, धर्मरक्षक, महाराज भद्रमहि के दरबार में आश्रय लिया। महाराज की इच्छा से अमेघ ने महाराज के इष्टदेव, देवाधिदेव महादेव की एक मूर्ति गढ़ कर तैयार की। कठोर पत्थर की शिलाओं पर हथौड़ा और छैनी चलाकर अमेघ ने अपने देवता के प्रति श्रद्धा के भावों को अत्यन्त सजीव रूप में प्रकट किया। पत्थर के बने उस मूर्ति के अंग जड़ और स्थिर होकर भी भावों की भाषा से मुखरित थे।

धर्मरक्षक, महाप्रतापी महाराज भद्रमहि मूर्तिकार अमेघ की कला के चमत्कार से अत्यन्त प्रभावित हुये। सौन्दर्य और कला के इस सन्तोष से महाराज के मन में सौन्दर्य और कला के लिये और अधिक रुचि उत्पन्न हुई। अमेघ को राजकीय-तक्षक का पद दिया गया। महाराज ने आंध्र, तामिल, द्रविड़ आदि देशों की पत्थर की खानों से बहुमूल्य पत्थर की शिलायें मँगवा कर पर्वत खड़े कर दिये और अमेघ को आज्ञा दी—"भद्र अमेघ, अपने हाथ से बनाई हुई देवमूर्ति के अनुरूप ही एक विशाल, अनुपम मन्दिर का निर्माण करो। इस मन्दिर की भित्तियों पर देवताओं के जीवन की कथायें चित्रों की भाषा में अँकित हों।"

अमेघ के लिये राजकोष से सुखमय जीवन की व्यवस्था थी। उसे महाराज का अन्तरङ्ग और अनुगृहीत होने का सम्मान प्राप्त था। राजपुरोहितों और पण्डितों की भांति वह राज-सभा में उपस्थित

होता। महाराज ने उसे रथ का आदर भी प्रदान किया। उसका जीवन सन्तुष्ट था।

जीवन की सब चिन्ताओं से मुक्त होकर वह अपनी कला के निखार में संतोष पाता था। कला उसके लिये जीवन का साधन नहीं बल्कि जीवन की साधना थी। संसार से निरपेक्ष होकर वह उस साधना में तृप्ति पाता था। अपनी कला साधना में किसी प्रकार का विघ्न या व्यतिरेक उसे स्वीकार ना था।

अमेघ का यौवन बीत गया परन्तु विवाह और गृहस्थ का आयोजन करने का ध्यान उसे न आया। उसके जीवन के उद्वेग, आवेग और आवेश कला के रूप में प्रकट होकर चरितार्थ होते रहे।

हित-चिन्तकों और मित्रों ने सुझाया, ऐसी अपूर्व कला की उचित उत्तराधिकारी स्वयं कलाकार की अपनी सन्तान ही हो सकती है। अमेघ ने अपनी कला के उत्तराधिकारी पुत्र की इच्छा से प्रौढ़ अवस्था में विवाह किया। कुछ समय पश्चात् प्रौढ़ अमेघ की पत्नी ने एक सन्तान प्रसव कर पति के प्रति अपना कर्तव्य पूरा किया और इसके साथ ही वह इस संसार को छोड़ कर चल दी। दैवेच्छा से यह सन्तान कन्या हुई। अमेघ ने इसे दैव की इच्छा समझा और संतोष कर लिया।

अपनी प्रौढ़ावस्था की मातृहीन लाड़ली सन्तान को अमेघ प्रायः अपने समीप ही रखता। इस कन्या का समीप रहना प्रौढ़ के निर्बल शरीर को शक्ति देता रहता।

तुतलाना आरम्भ करते ही अमेघ की कन्या प्रायः कला की साधना में रत पिता की गोद में आ कूदती और उसकी हथौड़ी और छैनी थाम लेती : पत्थर के टुकड़ों, उनके रूप-रंग-उपयोग और भाव के सम्बन्ध में अनेक बालसुलभ प्रश्न पूछने लगती।

अमेघ मुस्कराकर बाल-बुद्धि के योग्य उत्तर देने की चेष्टा करता और फिर यह भूल कर कि श्रोता केवल अबोध बालिका है, वृद्ध कलाकार कला के षडंग तत्वों की विवेचना करने लगता।

बालिका मेधा आश्चर्य से फैले नेत्रों से दाढ़ी-मूँछ की संधि

में छिपे पिता के होठों से निकलते शब्दों को सुनती रहती और फिर कहती—"बाबा हम भी मूर्ति गढ़ेंगे !"

अमेघ बालिका को तक्षणकला सिखाने लगता।

जब मेघा किशोरावस्था के पार पहुँची, वह कई मूर्तियां गढ़ चुकी थी। पारखी दर्शक उन मूर्तियों की प्रशंसा करते और अमेघ के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिये कहते—"यदि दैव ने कलाकार को पुत्र रत्न का आशीर्वाद दिया होता, कलाकार के वंश का यश अमर हो जाता।"

स्तुति के रूप में अपनी यह निन्दा सुन मेघा भोले और उदास नेत्रों से पिता की ओर देखती। वृद्ध पुत्री के सिर पर हाथ रख कर आंखें मूंद लेता।

एक दिन आँसुओं से छलके अपने विशाल नेत्र पिता की ओर उठाकर मेघा ने प्रश्न किया—"बाबा, क्या कन्या से कला की परम्परा की रक्षा नहीं हो सकती ?"

अमेघ ने बेटी का सिर अपने हृदय पर रख सान्त्वना दी—"क्यों नहीं बेटी, कला की देवी सरस्वती स्वयं नारी हैं।"

अमेघ के अंग शिथिल हो गये थे और रोग से वह और भी दुर्बल हो गया था परन्तु पत्थर के खण्ड पर छैनी और हथौड़ी का आघात सुने बिना उसे कल न पड़ती, संसार सूना-सूना लगता। वह मसनद का सहारा लिये लेटा रहता। समीप ही भूमि पर शिला का टुकड़ा रख मेघा पिता के बताये अनुसार मूर्ति गढ़ा करती।

ऐसे ही बीतते दिनों में एक दिन अमेघ के लिये इस संसार से चल देने का भी समय आ गया। मेघा अपने पिता के वियोग में बहुत कलपी और फिर एक विशाल शिलाखण्ड ले उसने पिता की मूर्ति गढ़ना आरम्भ कर दिया। जब पिता की स्मृति बहुत तीखी हो जाती, छैनी-हथौड़ी एक ओर छोड़ वह मूर्ति के कंधों पर सिर रख उसे आँसुओं से स्नान कराने लगती।

× × ×

वृद्धावस्था आ जाने पर धर्मरक्षक, महाप्रतापी महाराज भद्रसिंह की इच्छा हुई कि उनकी धर्म-कीर्ति के केतु, संसार प्रसिद्ध देवमन्दिर

के आँगन में उनकी भक्ति भावना की स्मृति के लिये उनकी एक मूर्ति भक्त के रूप में बन जाय। एक उपयुक्त मूर्तिकार की खोज में उन्होंने दूर दूर देशों में दूत भेजे।

वैशाख बीत रहा था। बसंत ऋतु की कोमल उमंग का स्थान ग्रीष्म की प्रखरता ले रही थी। वृक्षों की फुनगियों पर कोमल पत्ते फूलों के गुच्छे कुम्हलाने लगे थे। मेघा शरीर का स्वेद पोंछ बार-बार वायु के लिये गवाक्ष के सम्मुख जा खड़ी होती। ऐसे ही समय मेघा ने अपनी दासी के मुख से सुना कि उसके पुण्यकीर्ति पिता के बनाये मन्दिर में महाराज की मूर्ति गढ़ने के लिये नागदेश से एक यशस्वी युवक कलाकार तक्षक आया है। वह निरन्तर शिलाखण्ड पर छेनी चला रहा है।

अपने पिता की कला की स्मृति देव मन्दिर में किसी दूसरे कलाकार के आकर तक्षण करने के समाचार से मेघा के मन में ईर्षा हुई। और फिर ऐसे यशस्वी कलाकार की कला देखने का कौतूहल भी हुआ। इन दोनों ही भावों का दमन करने के लिये वह अपनी छेनी और हथौड़ी ले पिता की मूर्ति गढ़ने में मन लगाने का यत्न करती परन्तु गरमी और श्रम के कारण माथे से बह चलने वाले स्वेद को पोंछने के लिये जब हाथ एक बेर मूर्ति से हट जाते तो मन कल्पना में उड़ जाने के कारण हाथ बहुत समय तक ठिठके रह जाते। वह सोचने लगती -जगत प्रसिद्ध, अनुभवी कलाकार मेरे पिता के आसन पर एक युवक कलाकार? ......उसका क्या ज्ञान और क्या क्षमता होगी ?" इस प्रकार कई दिन, सप्ताह, पखवाड़े, ग्रीष्म के दो मास बीत गये।

पावस की एक भीगी मेघ छाई दोपहर में मेघा अपने पिता की मूर्ति गढ़ने में मन लगाने की चेष्टा कर रही थी। परन्तु मेघों के मन्द गर्जन और झरोखे से आने वाली फुहार के झोंके उसका ध्यान मूर्ति से उड़ा ले जाते। नित्य का एक ही प्रयत्न और नित्य का चिंतन उस परिस्थिति में मन को उचाट कर असह्य हो रहा था। वह कल्पना को वश में कर पिता का चेहरा याद करने की चेष्टा करती परन्तु कल्पना में दिखाई देने लगता मन्दिर में पिता की मूर्ति गढ़ने का आसन और कोई परा कलाकर उस पर बैठा हुआ, जिसका शरीर

युवा और रूप अस्पष्ट था। वह कौन है, वह यहाँ कैसे आन बैठा ? मेघा का मन क्षुब्ध होने लगता और फिर अपनी कल्पना के समान ही, वायु से बिखरते जाते मेघों की ही भांति उसे अपना शरीर भी अवश होता जान पड़ता। विकलता से ऐंठते अपने शरीर का बोझ वह पिता की अपूर्ण पत्थर की मूर्ति पर डाल देती। उसके विकल अंग कठोर पत्थर का आलिंगन कर लेते। आश्रय के लिये उसे स्थिर और कठोर आधार की आवश्कता थी। वह व्याकुलता से दीर्घ श्वास लेने लगती परन्तु पत्थर की अविचल मूर्ति उसे आश्रय का संतोष न दे पाती।

मूर्ति को सहसा छोड़कर उसने अपनी दासी को पुकारा—"... रथ तैयार हो! मैं पिता के मन्दिर में बनती महाराज की मूर्ति के दर्शन के लिये जाऊँगी।"

देवमूर्ति के प्रति सम्मान के लिये मेघा मन्दिर के द्वार से एक सौ पद पूर्व ही रथ से उतर गई। उसने शंकित पदों से मन्दिर के आँगन में प्रवेश किया। उसने जाना की देवालय के दायीं ओर के विशाल कक्ष में युवक कलाकार मूर्ति गढ़ रहा है। उसी ओर से पत्थर पर लोहा लगने की आहट भी सुनाई दे रही थी। वह दबे पाँव उसी ओर गई।

मेघा अनेक क्षण तक कक्ष के द्वार पर खड़ी देखती रही कि एक सुडौल शरीर युवा मनुष्य के आकार के एक पत्थर के खम्भे के सामने खड़ा अनमने भाव से उस पर हथियार चला रहा है। उस युवा के सहायक तक्षक मूर्ति के निचले भाग में बेदी बनाने के काम में लगे हैं।

मेघा ने देखा—युवक का मन कला में नहीं है। कभी वह दो हाथ हथियार के चलाता है और मूर्ति की ओर दृष्टि किये कुछ गुनगुनाने लगता है। फिर उसकी दृष्टि दूसरी ओर चली जाती है। कलाकार कंधों पर फैले अपने काले चिकने केशों को झिटका दे अपने हथियार समीप खड़े दास को थमा कर, मूर्ति को छोड़ कर चल देता है।

कला के प्रति ऐसी उदासीनता मेघा को भली न लगी। वह द्वार से लौटना ही चाहती थी कि कलाकार उसी की ओर घूम पड़ा और मेघा

से उसकी आँखें चार हो गयीं। कलाकार क्षण भर ठिठका और फिर क़दम बढ़ा मेघा की ओर आने लगा। मेघा भी विनय से खड़ी रह गई।

कक्ष के द्वार पर आ, मेघा का प्रणाम विनय से ग्रहण कर युवक कलाकार ने प्रश्न किया—'देवी, क्या देवालय की देवदासी हैं अथवा······?"

मेघा ने उत्तर दिया—"आर्य, मैं इस मन्दिर के निर्माता, राजकीय तक्षक, स्वर्गीय अमेघ की कन्या मेघा हूँ। कला के प्रति कौतूहल के कारण महाराज की बनती मूर्ति देखने चली आई। परन्तु आर्य, कला का यह अनमना ढंग तो पहले कभी नहीं देखा।"

युवक तक्षक ने मेघा को सिर से पांव तक देखा और फिर एक दीर्घ श्वास ले कक्ष के मध्य में खड़ी अधूरी मूर्ति की ओर देखा।

मेघा ने अनुभव किया, उससे अविवेक और अविनय का अपराध हुआ है। अपनी बात सम्भालने के लिये उसने फिर कहा—'आर्य, विशेष विवेक से महाराज की मूर्ति निर्माण कर रहे हैं इसी कारण चिन्तन अधिक और कार्य कम हो पाता है।"

'नहीं भद्रे, कुमारी की पहली बात ही ठीक थी। जो कला हृदय से नहीं उठती वह कष्ट साध्य, समय-साध्य और निर्जीव होती है। विश्रुत कलाकार की कन्या कला का मर्म जानती है।"—कलाकार ने विवशता के स्वर में उत्तर दिया।

"आर्य सत्य कहते हैं।"—मेघा ने समर्थन किया।

युवक तक्षक के प्रति उसके मन की कटुता मिट चुकी थी। उसने लौटने के लिये तक्षक की ओर देखा और देखा कि तक्षक ध्यान से उसकी ओर देख रहा था। उसकी दृष्टि में क्रोध और विरोध नहीं था फिर भी मेघा की चेतना ने चाहा, जैसे वह सिमिट जाय।

उस सन्ध्या से मेघा एक चपल विकलता सी अनुभव करने लगी। अपना शरीर उसे बोझल सा जान पड़ने लगा। सोचती इस शरीर को उठाकर कहाँ रख दे? कल्पना बार-बार राजमन्दिर के आँगन में पहुँच जाती। कानों में पत्थर पर छैनी चलने की मधुर खनखनाहट सुनाई देने लगती। और युवक कलाकार की विवशता की स्मृति से मन सहानुभूति में सिक्त होने लगता।

पिता की अपूर्ण मूर्ति को वह हाथ न लगा सकती। अपने बोझल शरीर से मसनद को दबाये वह आकाश में उमड़ते मेघों से मूर्तियों का बनना बिगड़ना देखती रहती और सोचती--नीचे की ओर सिमटता हुआ बादल का यह टुकड़ा कमर का रूप ले रहा है। ऊपर की ओर फैले हुये वे कंधे हैं। यहाँ एक टुकड़ा जुड़ जाने से वह भुजा नृत्य की मुद्रा का रूप ले लेगी या हाथ में हथौड़ा थामे कलाकार का। अनेक बेर इच्छा हुई कि दासी को पुकार कर राज मन्दिर जाने के लिये रथ तैयार कराने को कहे परन्तु लज्जा से ओठों पर आ गई बात वहीं रह जाती।

सातवें दिन मेघा ने मध्याह्न से पूर्व ही दासी रूपा को राज मन्दिर के लिये रथ तैयार कराने की आज्ञा दे दी। वह अपने कक्ष से मुख्य द्वार की ओर जा रही थी कि शीघ्रता से कदम उठाती चली आती दासी ने समाचार दिया—"राजकीय मन्दिर से तक्षक आर्य विशाख गृह द्वार पर कुमारी के दर्शन के लिये प्रस्तुत हैं।"

मेघा ने सुना और अपने को वश में रखने के लिये एक दीर्घ श्वास ले और धुकधुक करते हृदय पर हाथ रख कर पूछा—"क्या?"

जब तक दासी ने अपना संदेश दोहराया, मेघा अपने आपको प्रायः वश में कर चुकी थी। कक्ष में बैठने के स्थान की ओर जाते हुये उसने दासी को आज्ञा दी—"आर्य पधारें!"

तक्षक विशाख ने कक्ष में प्रवेश करने पर कुमारी को बाहर जाने के वेश में देखा और विनय से कुमारी के आयोजन में विघ्न डालने के लिये क्षमा मांगी।

अतिथि के सामने अर्घ्यपात्र में पान और सुगन्ध उपस्थित कर मेघा ने उत्तर दिया—"आर्य ने दासी के प्रयोजन में विघ्न नहीं डाला केवल उसे सहायता दी है। दासी आर्य की कला का दर्शन करने के लिये राजकीय मन्दिर की ओर ही जा रही थी।"

"परन्तु देवी, विशाख की कला तो पदार्थ का अवलम्बन न पा सकने के कारण व्यर्थ हो रही है।"—मेघा के मुख पर नेत्र लगाये विशाख बोला—"विशाख का मन अपने संतोष के लिये एक मूर्ति का तक्षण करने के लिये व्याकुल है।

"उचित कहते हैं आर्य!"—मेघा ने समर्थन किया।

"इसके लिये कुमारी की कृपा की आवश्यकता है।" --विशाख ने कहा।

"दासी सेवा के लिये प्रस्तुत है आर्य ! यह दासी का सौभाग्य है कि कला की सेवा का अवसर पाये।"--मेघा ने विनय से ग्रीवा झुकाली।

"विशाख ने कुमारी को जिस रूप में देखा है, उसकी कल्पना की है; कुमारी की आकृति को ले वह उस भाव को पाषाण में रूप देना चाहता है। इसके लिये प्रत्येक प्रातःकाल विशाख कुमारी के दर्शन करना चाहता है।"--विशाख ने कहा।

मेघा के मुख पर गहरी लाली छा गई और माथे पर हल्के स्वेद बिंदु। उसकी ग्रीवा अधिक झुक गई। स्वेद से पसीजती अपनी हथेलियों को दबा कर मेघा ने उत्तर दिया--"दासी तो इस योग्य नहीं है परन्तु......"

उसके नेत्र फिर झुक गये और वह बोली--"दासी अपने आयुध लेकर मन्दिर इस प्रयोजन से जा रही थी कि कला की सृष्टि के आवेश से विक्षिप्त कलाकार के सामर्थ्य को मूर्ति का रूप दे सके। दासी के जीवन में तक्षण के संतोष के अतिरिक्त और कुछ नहीं है आर्य !"

राजकीय तक्षक विशाख और कलाकार अमेघ की पुत्री प्रति प्रातःकाल स्नान के पश्चात देवता की मूर्ति के सन्मुख उपस्थित होते और एक घड़ी तक एक दूसरे को निहारते रहते। मनोयोग पूर्वक इस दर्शन का प्रयोजन था, तक्षण के लिये एक दूसरे की आकृति को मनस्थ करना। बिदाई का क्षण उन दोनों के लिये अत्यंत दुखद होता परन्तु दीर्घ निश्वास ले, नेत्र झुकाये वे बिदा हो जाते। इसके पश्चात् मन्दिर के दायें और बायें कक्षों से दिन भर और आधी रात बीते तक पत्थर पर छैनी चलने का शब्द सुनाई देता रहता। विशाख और मेघा अलग-अलग अपनी अपनी मूर्ति गढ़ने में लगे रहते। तक्षकों के आचार के अनुसार वे एक-दूसरे की साधनामें बाधक न होते।

इसी प्रकार तीन पखवाड़े बीत गये। संध्या समय मेघा को दीप जलाने की आवश्यकता न थी। वह मूर्ति समाप्त कर चुकी थी। कुछ

काल से वह उसे केवल मन और से देखकर अपना संतोष कर रही थी। माथे का स्वेद आंचल से पोंछते हुये आंगन की मुक्त वायु में आकर उसने देखा—विशाख भी गर्दन झुकाये, मौन, मन्दिर के आंगन में इधर-उधर टहल रहा है। मेधा के पदों की आहट से उसने आंख उठा मेधाकी ओर देखकर कहा-"देवी मैं अपनी मूर्ति समाप्त कर चुका हूँ।"

"आर्य दासी भी कार्य समाप्त कर चुकी है, जैसा भी बना हो।" मेधा ने उत्तर दिया।

दोनों ने परामर्श से निश्चय किया-रात्रि के पहले पहर देव पूजा समाप्त हो जाने पर दोनों ने अपनी अपनी बनाई मूर्ति एक दूसरे के देखने के लिये सेवकों से उठवा कर देवता के सिंहासन के सम्मुख उपस्थित कर दी।

विशाख बहुत समय तक मेधा की बनाई मूर्ति को और मेधा विशाख की बनाई मूर्ति को अपलक निहारती रही।

द्रवित होकर बहने के लिये तत्पर पुरुषार्थ से रुंधे कण्ठ से विशाख ने अपनी गढ़ी मूर्ति की ओर संकेत कर कहा—"हे नारीरूप देवी, आश्रय देने में समर्थ तुम्हारे इसी रूप में पुरुष तुम्हारे लिये साधना करता है।"

मेधा मौन रही परन्तु उसकी फैली हुई आंखें अपनी मूर्ति की ओर उठ गईं। कंपित स्वर में उसने उत्तर दिया—"आर्य तुम्हारे इसी सृजन समर्थ रूप को नारी आश्रय के लिये पुकारती है।"

× × ×

अगले दिन राजकीय मन्दिर के पुण्यात्मा, तपस्वी वृद्ध पुजारी ने सूर्योदय से पूर्व ही धर्मरक्षक महाप्रतापी, महाराज मणिभद्र के राज-प्रासाद में न्याय और धर्म की रक्षा के लिये दुहाई दी।

प्रधान पुजारी के आगमन का समाचार पा वृद्ध महाराज पलंग से उठ सुन्दरी युवति दासियों के कंधे का आश्रय लिये रनिवास की ड्योढ़ी की ओर चले आ रहे थे। उनके नेत्र अभी निद्रा के शेष से गुलाबी थे।

प्रधान पुजारी ने दुहाई दी—"धर्मरक्षक, प्रजापालक महाराज के राज्य की भूमि पाप से अपवित्र हो गई। उत्तर देश से आये युवक

तक्षक और भूत तक्षक अमेघ की पुत्री ने देवता के सिंहासन के सम्मुख पापाचार कर राजकीय मन्दिर को अपवित्र कर दिया।"

महाराज के नींद से गुलाबी नेत्र लाल हो गये और युवा सुन्दरी दासियों के कन्धों पर रखे उनके हाथ क्रोध से काँप उठे। उन्होंने आज्ञा दी—'ऐसे पातकियों को मन्दिर के द्वार पर हाथी के पांव तले कुचलवा कर प्राण दण्ड दिया जाय।"

× × ×

मन्दिर को होम और मन्त्र पाठ से पवित्र किया गया। प्रधान पुजारी ने तक्षक विशाख और मेधा की मूर्तियों को उठवा कर मन्दिर के द्वार के सम्मुख उसी स्थान पर रख दिया जहां उन्होंने अपने पाप का दण्ड पाया था। प्रयोजन था—जनता के लिये पाप से दूर रहने की शिक्षा का स्मृति चिन्ह रहे। मन्दिर के द्वार पर हाथी के पांव तले कुचल कर मारे गये विशाख और अमेधा की मृत्यु के समाचार से जनता उससे भयभीत थी। अनेक प्रकार की दन्तकथायें मन्दिर मन्दिर में प्रेतात्माओं के चीत्कार करने और मन्दिर की भयानकता के विषय में फैल गईं और जनता मन्दिर से दूर रही।

प्रधान पुजारी की प्रार्थना से शुभ लग्न में मन्दिर को राज्यप्रवेश से पवित्र करने का आयोजन किया गया। धर्मरक्षक महाप्रतापी महाराज भद्रसहि स्वर्ण के रथ पर सवार हो राजदर्बार से राजमन्दिर की ओर चले। राजपथ अनेक रंग के लेखनों से चित्रित और धान की श्वेत खीलों से छाया हुआ था। राज्य-पथ के दोनों ओर खड़ी जनता धर्मरक्षक महाप्रतापी की जय ध्वनि कर रही थी और रथ के आगे मंगल गान करने वाले चारण और मंगल वाद्य बजाने वाले वादक चल रहे थे।

मन्दिर द्वार से एक सौ पग पहले महाराज रथ से उतर पांव पैदल चलने लगे। उनके साथ राजपुरोहित स्वर्ण के आधार पर देव पूजा का अर्घ्य तथा पूजा के उपकरण ले चल रहे थे। जनता जय ध्वनि कर रही थी।

मन्दिर के द्वार के समीप पहुँच महाराज की दृष्टि विशाख और मेधा की मूर्तियों पर पड़ी। कला मर्मज्ञ महाराज उन मूर्तियों को ध्यान से देखने लगे और फिर उसी ओर आकर्षित हो गये। महाराज उन

मूर्तियों को अनेक क्षण तक अपलक देखते रहे और फिर मूर्तियों के सम्मुख नतजानु हो महाराज ने मूर्तियों की वन्दना की।

वेदज्ञ राज्य पुरोहित की ओर देख महाराज ने उन मूर्तियों की पूजा के लिये आदेश दिया। पण्डितों ने स्तोत्र पाठ किया और पुजारियों ने विधि पूर्वक मूर्तियों की पूजा की। महाराजने पुनः मूर्तियों के सम्मुख श्रद्धा से मस्तक झुका प्रणाम किया और गद्‌गद् स्वर में पुकार उठे- -"वन्दे पार्वती परमेश्वरौ !

शंख वाहक ने शंख स्वर से आकाश को पूरित कर दिया। जनता ने तुमुल स्वर से देवताओं और महाराज का जय घोष किया।

महाराज के आदेश से मन्दिर में प्राचीन देव-मूर्ति स्थान पर कला के चमत्कार से पूर्ण नवीन मूर्ति युगुल स्थापित कर दिया गया और राज मन्दिर का नाम शिव पार्वती का मन्दिर प्रसिद्ध हो गया।

४

खुदा की मदद —

उबेदुल्ला 'मेव' और सैय्यद इम्तियाज अहमद हाई स्कूल में एक साथ पढ़ रहे थे। उबेद छुट्टी के दिनों में गाँव जाकर अपने गुज़ारे के लिये अनाज और कुछ घी ले आता। रहने के लिये उसे इम्तियाज अहमद की हवेली में एक खाली अस्तबल मिल गया था। इम्तियाज का बहुत-सा समय कनकैयाबाजी, बटेरबाजी, सिनेमा देखने और मुजरा सुनने में चला जाता, और कुछ फुटबाल, क्रिकेट में। वालिद साहब कुछ पढ़ने-लिखने के लिये परेशान ही कर देते तो वह पलंग पर लेट कर नाविल पढ़ता-पढ़ता सो जाता। जब इम्तियाज यह सब फन और हुनर पास कर रहा था, उबेदुल्ला अस्तबल में अपनी खाट पर बैठ तिकोन का क्षेत्रफल निकालने, 'क' को 'ख' से गुणा कर 'ज' से भाग देकर, उसे 'म' और 'ल' के जोड़ के बराबर प्रमाणित करने और इस देश को ईस्ट-इण्डिया कम्पनी द्वारा दी गई बरकतें याद करने में लगा रहता। इम्तियाज को उबेद का बहुत सहारा था। स्कूल में जब मास्टर लोग घर पर काम करने के लिये दिये गये काम के बारे में सख्ती करने लगते, तो वह उबेद की कापियों की मदद ले मास्टरों की तसल्ली कर देता। उबेद यह सब देखता और सोचता था, 'मेहनत और सब्र का फल एक दिन मिलेगा। खुदा सब कुछ देखता है।'

उबेद मैट्रिक के इम्तिहान में पास हो गया। इम्तियाज के वालिद सैय्यद मुर्तजा अहमद को काफी दौड़-धूप करनी पड़ी। उनका काफी रसूख था। इम्तियाज भी पास हो गया। उबेद का अपने गाँव में गुज़ारा मुश्किल था। ज़मीन इतनी कम थी कि सभी लोग घर पर

रहते तो निठल्ले बैठे रहते या खेत में मजदूरी करते। जुताई पर जमीन मिलना भी आसान न था। घर वाले कहते थे, "इतना पढ़ाया-लिखाया है, तो क्या हल चलवाने के लिये? अगर जमीन से ही सिर मारना था, तो इल्म का फ़ायदा क्या?" उबेदुल्ला आगरे में कोशिश करता रहा। कभी भट्टे पर नौकरी मिल जाती, कभी किसी जूते के कारखाने में। तनख्वाह बीस बाइस रुपये, और फिर नौकरी पक्की नहीं। इतने में इम्तियाज मुरादाबाद से सब-इंस्पेक्टरी पास करके आ गया, और उसे अपने ही शहर में नौकरी मिल गई। इम्तियाज ने फिर उबेद की मदद की। उबेद कांस्टेबिल हो गया।

यह ठीक है कि लाल पगड़ी और खाकी वर्दी पहन कर उबेद आम लोग-बाग के सामने हुकूमत दिखा सकता था, लेकिन जान-पहचान के लोगों में, साथ पढ़ने वालों का सामना होने पर उसके मुंह में कड़ुवाहट-सी आ जाती, खास तौर पर जब उसे इम्तियाज के सामने सलूट देनी पड़ती। उसे यह न भूलता कि स्कूल में इम्तियाज उसकी कापियों से नकल किया करता था। लेकिन अगर इनसान के किये ही सब-कुछ हो सकता खुदा तो की हस्ती को इनसान कैसे पहचानता? सैयद इम्तियाज रसूल के खानदान से थे। खैर, कभी तो मेहनत और ईमानदारी का नतीजा सामने आयेगा। खुदा सब कुछ देखता है। उबेद की ड्यूटी नाके पर लगती या रात की गश्त में पड़ती तो चवन्नियों, अठन्नियों की शक्ल में फायदा उठा लेने का मौका रहता। उसके साथ के सब लोग ऐसा करते ही थे। वर्ना अठारह रुपये की कांस्टेबिली में क्या रखा था? पर उबेद नियत न बिगाड़ता। उसे ईमानदारी और मेहनत के अंजाम पर भरोसा था। जब वह एड़ी से एड़ी ठोक कर दारोगा साहब को सलूट देता था तो मन में एक आदर्श की पूजा करता था। वह आदर्श था—सिर की लाल पगड़ी पर लटकता सुनहरा झब्बा, पीतल का चमचमाता ताज, कंधे से कमर तक लगी हुई चमड़े की पेटी। तनख्वाह चाहे अधिक न हो, पर वह सरकार का प्रतिनिधि होगा। इतिहास में उसने कई बादशाहों और खलीफाओं का जिक्र पढ़ा था, जो गरीबी में गुजारा कर इनसाफ करते थे। वैसे ही वह भी करेगा। हिन्दुस्तानी अफसर अकसर कमीनापन करते हैं। अंग्रेज के हाथ में इनसाफ है। इसी-लिये खुदा ने उसे इतना रुतबा दिया है।

सैयद इम्तियाज अहमद सी० आई० डी० डिपार्टमेंट में हो गये थे। उबैद पढ़ा-लिखा था। उन्होंने उसे भरोसे-लायक आदमी समझ अपने नीचे ले लिया। उसे अदना सिपाही की वर्दी से मुक्ति मिली, साइकिल का और दूसरे भत्ते मिलने लगे। ड्यूटी की जहमत के बजाय उसका काम हो गया खबर लेना-देना। सरकार के सामने उसकी बात का मूल्य था। उस ने एक तथ्य समझा—शहर में जितना आतंक, अपराध और सनसनी हो, सरकार की दृष्टि में उसका मूल्य उतना ही अधिक है। सैयद साहब स्वयं जो चाहे करते हों, लेकिन उन्हें भरोसे से आदमियों की जरूरत थी, जो कम-से कम उन्हें तो धोखा न दें। ऐसे मामलों में अक्सर उबैद की ड्यूटी लगती। मेहनत का नतीजा भी उबैद को मिला। जल्दी ही उसकी वर्दी आस्तीन पर पहले एक बत्ती, फिर दो लग गईं।

इस महकमे में नौकरी करते उसे बरस ही पूरा हुआ था, कि सन ४२ का अगस्त आ गया। जगह-जगह से रेलें और तार के खम्भे उखाड़ दिये जाने और थाने जला दिये जाने के भयंकर समाचार आने लगे। उबैद को लोग-बाग की आँखों में सरकार के लिये और अपने लिये नफरत और सरकशी दिखाई देने लगी। उसे याद आया, कि स्कूल में सन १८५७ के गदर का हाल पढ़ते समय जाहिरा तारीफ अँग्रेजों की ही की जाती थी, लेकिन सभी के मन में मुल्क को आजाद करने के लिये विदेशियों से लड़ने वालों की ही इज्जत थी। मालूम होता था कि फिर वही वक्त आ रहा है। लेकिन अब वह अँग्रेज सरकार का नौकर था। एक बार वह मन में सहमा। अगर रिआया और सरकार की इस पकड़ में सरकार चित्त हो जाय तो उसका क्या होगा? उस वक्त उसने रेडियो पर लाट हैलट साहब का फर्मान सुना। लाट साहब ने कहा—"इस वक्त सरकार मुल्क के बाहर दुश्मनों से लड़ रही है। कुछ शरारती और सरकश लोग रिआया को सरकार के खिलाफ भड़का कर अमन में खलल और परेशानियाँ पैदा कर रहे हैं। हमारी सरकार को अपनी वफादार रिआया, पुलिस और फौज पर पूरा भरोसा है। हमारी सरकार के जो अमले इस सरकशी और बदअमनी को खत्म करने में जी-जान से इमदाद करेंगे, सरकार उनकी खिदमतों का मुनासिब एतराफ करेगी। पुलिस और फौज को सरकशी खत्म और अमन कायम

करने का फर्ज पूरा करने में जो सख्ती करनी पड़ेगी, उसके लिये सरकारी नौकरों, पुलिस या फौज के खिलाफ कोई शिकायत नहीं सुनी जायगी, न उसकी कोई जाँच पड़ताल होगी।"

उबेद का सीना गज भर का हो गया। बाजारों में 'इन्कलाब जिन्दाबाद' और 'अंग्रेजी सरकार मुरदाबाद' की आसमान फाड़ देने वाली जनता की चिल्लाहटों और थानों, कचहरियों को जला देने की अफवाहों से थर्राते उबेद के दिल को सान्त्वना मिली। उसने सोचा, 'उधर जिन्दाबाद और मुर्दाबाद की चिल्लाहट और लाखों सरकश हैं तो हमारे पास भी राइफलों से मुसल्लह गारदें, फौज, तोपखाने और हवाई जहाज हैं। अगर एक बम आगरे पर गिरा दिया जाय तो सरकश रिआया का दिमाग दुरुस्त हो जाय।'

थाने में अधिकतर मुसलमान सिपाही थे। कोतवाल साहब भी मुसलमान थे। उन्होंने रेडियो पर हुआ कायदे आजम का एलान सब सिपाहियों को बताया कि हिन्दू कांग्रेस की इस बगावत का मकसद अंग्रेज सरकार को डरा कर मुल्क में हिन्दू-कांग्रेस का राज कायम करना है। मुसलमानों को इस बगावतसे कोई सरोकार नहीं। मुसलमान हिन्दू कांग्रेस से डर कर, उनका राज हरगिज कायम न होने देंगे।

कोतवाल साहब सिपाहियों को यों भी समझाते रहते थे कि मुसलमान हाकिम कौम है। ये हमेशा मुल्क पर हुकूमत करते आये हैं। इसी आगरे के किले में मुसलमान हकूमत करते थे। अंग्रेज हमेशा मुसलमान का एतबार और इज्जत करता है। ईसाई हमारे अहले-किताब हैं। खुदा ने अंग्रेज को ओहदा दिया है और हम लोगों को उसकी मदद करने का हुक्म है। यह कांग्रेस के बनिये बक्काल क्या हुकूमत करेंगे? इन्हें चरखा कातना है, तो लहँगा पहन लें और बैठ कर सूत कातें। मुसलमान शेर कौम है। हमेशा से गोश्त खाता आया है। अब घास कैसे खाने लगे?

उबेद भी सोचता, 'इन लोगों के राज में हम लोगों का गुजारा कैसे हो सकता है? हम लोग भला इनकी गुलामी करेंगे? रिआया की सरकशी और बगावत की जीत का मतलब है कि पुलिस, फौज और हुकूमत तबाह हो जाय। जैसे हम लोग कुछ हैं ही नहीं। थानों

हम लोग दो रोटी के लिये सिर पर झाबा रखे तरकारी बेचते फिरें, या इनके लिये इक्के हांकें।' उसने मन-ही-मन सरकश रिआया को गाली दी और उनके प्रति नफरत से थूक दिया।

उस समय रिआया ने सरकार को जाने क्या समझ लिया था। पटवारियों, तहसीलदारों, जैलदारों, थानेदारों की सब ज्यादतियां और जबरन जंगी चन्दा वसूल किये जाने का बदला लेने के लिये, देहातों में खाली हाथ या ढेला, पत्थर और लाठी ले उठ खड़े हुये। ज्यों-ज्यों जनता का विरोध बढ़ता जा रहा था, सरकार सिपाहियों का लाड़ और खुशामद अधिक कर रही थी।

यू० पी० के पूर्वी जिलों के देहात में विद्रोह अधिक था। पश्चिम के जिलों से वफादार और समझदार पुलिस को स्थानीय पुलिस की सहायता के लिये भेजा गया। सैयद इम्तियाज अहमद की मातहती में उबेद भी बनारस जिले में गया। विशेष भरोसे का और समझदार होने के नाते उसे खद्दर की पोशाक में देहाती बन कर सरकशों का पता लगाने का काम सौंपा गया। दिन भर गांव-गांव फिर कर अगर वह सांझ को खबर देता कि सब अम्नोआमान है तो सैयद साहब उसे फटकार देते, और रपट लिखते कि 'मातबर जरिये से पता चला है कि पड़ोस का थाना फूंक देने वाले सरकश लोग गांव में छिपे हुये हैं।' रपट में कुछ सरकश बनियों के नाम खास तौरपर रहते। साहब के यहां उबेद की कारगुजारी पहुँचने पर उसकी पीठ ठोंकी जाती। गारद आकर गांव को घेर लेती। एक-एक झोंपड़ी और मकान की तलाशी ली जाती। भगोड़ों का पता पूछने के लिये लोगों की मुश्कें बांध कर पीटा जाता, औरतों को नंगी कर देने की धमकी दी जाती। तबीयत होती तो धमकी को पूरी कर दिखा देते। इस मुहिम में पुलिस वालों के हाथ जो लग जाता, थोड़ा था। किसी के घर से घी की हांडी, गुड़ की भेलियां, किसी की अंटी से दो-चार रुपये, किसी औरत के गले या कलाई से चांदी के गहने उतर जाने का क्या पता चलता? सिपाहियों ने खूब खाया। सेरों चांदी की गठरियां उनके थैलों में छिपी रहतीं। किसी घर में छबीली औरत या जवान लड़की की झांकी पा जाते तो घर की तलाशी ले लेते। मर्दों को शक में पकड़ कैम्प में भिजवा देते, औरतों से पूछते, 'बताओ भगोड़े बदमाश

कहां छिपे हैं ?" और उन्हें बांह से घसीट कर अरहर के खेतों में ले जाते। शान्ति कायम करने के लिये पुलिस की इन हरकतों के खिलाफ यदि किसी देहाती के माथे पर बल दिखाई देते तो उसे पेड़ से बांध कर उसके सारे शरीर के बाल झाड़ दिये जाते। पुलिस अनुभव कर रही थी कि वह वास्तव में राज कर रही है।

बदमाशों की खोज-खबर लगाने का काम सरकार की दृष्टि में सब से महत्वपूर्ण था। कटौना का थाना फूंकने वालों का पता लगाने के लिये उबैद को मोहरसिंह के साथ ड्यूटी पर लगाया गया। रघुनाथ पांडे छः मास से फरार था। उबैद ने साधु का भेष बनाया और काशी जी में फिरता रहा। वह हाथ देख कर भाग्य बताता, रमल चलाता और बात-बात में राज-पलट होने, नये राजा, तालुकदार बनने और तांबे का सोना बनाने की बातें करता। इसी तरह बातों-बातों में उसने रघुनाथ पांडे को खोज निकाला और गिरफ्तार करवा दिया।

देश में शान्ति स्थापित हो गई। उबैद आगरा लौट आया और उसकी कारगुजारी के इनाम में उसे हेड कांस्टेबिल का ओहदा मिला। आगरे में भी उसे सियासी फरारों की तलाश के काम पर लगाया गया। यहां उसने कुछ दिन इक्का हांक कर, फरार निर्मल चन्द को गिरफ्तार करा दिया। उसे पूरा भरोसा था कि जल्दी ही सब-इन्सपेक्टरी मिल जायगी।

मुल्क में अमनो-आमान कायम हो गया था पर जाने अँगरेजों को क्या सूझा कि उन्होंने सरकार का काम कांग्रेस वालों को सौंप दिया। अफवाहें उड़ रही थीं कि सब जेल जाने वाले ही अफसर बनेंगे और अंग्रेज सरकार से वफादारी निभाने वालों से बदले लिये जायंगे। कुछ दिनों में ही इतना परिवर्तन हो गया कि जो गांधी टोपी छिपती फिरती थी, अब अकड़ कर मोटर पर सवार थाने में पहुँचने लगी। लाल पगड़ी को उसके सामने झुक कर सलाम करना पड़ता। अँगरेज सरकार के समय जिन अफसरों का मान था वे अब घबरा रहे थे। पुरानी सरकार के प्रति वफादारी नयी सरकार की निगाह में गद्दारी थी। उबैदुल्ला सोचता था- 'यह अल्लाह ने क्या किया ?" पुलिस के बड़े मुसलमान अफसर, मिर्ज़ा इकराम अहमद और दूसरे साहबान, तुर्की टोपी की जगह किश्तीनुमा टोपियां

बदलने लगे, और फिर गांधी टोपी। वे अपने से नीचे के ओहदे के सहमे हुए लोगों को समझाते- "अपना फर्ज है हाकिमेवक्त का वफादार रहना। सियासियत से हमें क्या मतलब ?"

उबैदुल्ला मन ही मन सोचता कि बेइज्जत होकर बर्खास्त होने से बेहतर है कि बाइज्जत रह खुद इस्तीफा दे दे। इस नयी सरकार को उसकी जरूरत क्या ? खास कर सियासी खुफिया पुलिस की उसे क्या जरूरत ? 'जब रिआया का अपना राज हो गया तो लोग खुद ही कानून बनायेंगे और उन्हें मानेंगे। कौन बगावत करेगा, जिसे हम पकड़ेंगे ? यह जनता की सरकार हमें क्यों पालेगी ?''

सरकारी नौकरों और पुलिसों को अपनी मर्जी से हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बँट जाने का मौका दिया गया। उबैद ने सोचा कि इस हिन्दू राज से पाकिस्तान हो चला जाय। बड़े-बड़े मुसलमान अफसर भी ऐसी ही बातें कर रहे थे। पुलिस में मुसलमान ही ज्यादा थे। सब पुलिस अगर पाकिस्तान ही पहुँच जाय तो रिआया से ज्यादा तो पुलिस ही हो जायेगी। वह घबरा रहा था। जिन लोगों की चौकसी कर वह डायरी लिखा करता था, वे लोग अब सरकारी परमिट लाकर बड़े-बड़े कारोबार कर रहे थे। अब तक बड़े लाट लोग अँग्रेज थे, कुछ धीरज था। उम्मीद थी कि शायद फिर दिन फिरें। एक बार पहले भी कांग्रेस सरकार हुई थी, और चली गई। लीग वाले भी जोर बांध रहे थे। लेकिन अगस्त १९४७ में जब लाट भी कांग्रेसी बन गये, तो वह धीरज भी जाता रहा। वह देखता रहता था कि सैयद साहब अब इस या उस कांग्रेसी नेता के यहां मिलने आते-जाते रहते थे और प्रायः जिक्र करते रहते थे, कि उनके मरहूम वालिद साहब मौलाना शौकतअली और मुहम्मदअली के जिगरी दोस्त थे, और खिलाफत तथा कांग्रेस में काम करते रहे हैं। वे तो एक बार लखनऊ भी हो आये थे। उबैद सोचता—'ये तो खानदानी और बड़े आदमी हैं। पहले रसूख के जोर पर ओहदे पर चढ़ गये अब भी इनका गुजारा हो जायगा। अंग्रेजी सरकार के जमाने में इन्होंने मुसाहबियत के सिवा किया क्या है ? लेकिन हमने तो ईमानदारी और नमकहलाली निभाई है। ऊपर के दफ्तरों में रिकार्ड देखे जा रहे होंगे और बर्खास्ती का हुक्म आया ही चाहता है।''

अँग्रेजों ने हिन्दुस्तान का शासन कांग्रेस और लीग को ऐसे समय सौंपा जब युद्ध के बोझ के कारण देश की आर्थिक अवस्था अस्त-व्यस्त हो चुकी थी। कीमतें चौगुनी बढ़ गई थीं। मुनाफे के लोभ में व्यापारियों ने बाजारों को समेट कर गोदामों में बन्द कर लिया था। सरकार राष्ट्र-निर्माण करना चाहती थी। जनता रोटी मांग रही थी। व्यवसायी लोग दाम नीचे न गिरने देने के लिये माल की तैयारी कम कर रहे थे। जो माल बनता, उसे सरकारी कीमत की मोहर लगवाये बिना चोर-बाजार में खींच लेते। मजदूर अपनी मजदूरी से पेट न भर पाने के कारण मजदूरी बढ़ाने की मांग कर रहे थे। मजदूरी न बढ़ने पर मजदूर हड़ताल की धमकी दे रहे थे। सरकार हड़ताल को राष्ट्र के लिए घातक समझ रही थी। हड़ताल-विरोधी कानून बना दिये गये। इस पर भी हड़तालें न रुकीं। सरकार कम्युनिस्टों को हड़ताल के लिये जिम्मेवार समझ, गिरफ्तार करने लगी। कम्युनिस्ट लोग कांग्रेस और अँग्रेजों की लड़ाई की परम्परा के अनुसार स्वयं बिस्तर लेकर थाने में पहुँच जाने के बजाय फरार होकर, अपना आन्दोलन चलाने लगे। कम्युनिस्ट नेताओं को गिरफ्तार करना सरकार के लिये एक समस्या हो गई।

मि० चक्रवर्ती अँग्रेज सरकार के जमाने में आतंकवादी लोगों के षड्यंत्रों की खोज-खबर लगाने और उन्हें गिरफ्तार करने में काफी कीर्ति कमा चुके थे। नयी सरकार ने उन्हें गुप्तचर विभाग का डी० आई० जी० बनाकर यह काम सौंपा। मि० चक्रवर्ती ने ऐसे षड्यंत्रों और और अपराधियों को पकड़ने की रसायनिक विधि का उपयोग किया। जैसे कूजे की मिस्री बनाने के लिये मिस्री की एक डली को चाश्नी में लटका देने से चीनी के कण जल से सिमिट कर एक जगह जम जाते हैं, और उन्हें बाहर कर लिया जाता है, वैसे ही उन्होंने अशान्ति की बात धीमे-धीमे करने वाले अपने आदमियों को जनता में छोड़ शरारती लोगों को इकट्ठा कर लेने का उपाय सोच निकाला।...

अँग्रेज अफसरों के नौकरी छोड़ विलायत चले जाने के कारण, सैयद साहब को डी० एस० पी० की जगह मिल गई थी। उबेद को सैयद साहब के यहाँ हाजिरी का हुक्म आया। उसे मालूम हुआ कि

पिछली कारगुजारी की बुनियाद पर उसे स्पेशल ड्यूटी के लिये चुना गया है। दो काम खास थे—एक तो पाकिस्तानी एजेंटों का पता लगाना और दूसरा मजदूरों में बदअमनी फैलानेवाले कम्युनिस्टों की खोज। उबैद को धीरज हुआ। सरकार चाहे जो हो, इन्तजाम और निजाम तो रहेगा ही। वह फालतू नहीं हो गया। लेकिन अपनी बिरादराने-दीन को वह पकड़ेगा? उसने मन को समझाया, 'मजहब और सियासियात अलग अलग चीजें हैं। हाकिमे वक्त से वफादारी भी तो अल्लाह का हुक्म है। मजहब अपनी जगह है, मुल्क अपनी जगह। ईरानी और तुर्क, दोनों मुसलमान हैं लेकिन अपने-अपने मुल्क के लिये उनमें जंग होती रही है।' फिर भी उसने कोशिश की कि हड़तालियों की पड़ताल पर ड्यूटी रहे तो अच्छा है। ऐसे आदमियों के खिलाफ उबैद को स्वयं ही क्रोध था। गरीब भले आदमी यों ही कपड़े के बिना मरे जा रहे हैं, ये बेईमान हड़ताल करके और कपड़ा नहीं बनने देंगे। शहर में बिजली, पानी बन्द करके दुनिया को मार देना चाहते हैं। ऐसे कमीनों का तो यह इलाज ही है कि जूते लगायें और काम लें! कमीने लोग कभी खुशी से काम करते हैं? उनका तो इलाज ही डंडा है।

उबैद को फरार कम्युनिस्टों और मजदूरों में असंतोष फैलाने वाले उपद्रवी लोगों का पता लगाने के लिये कानपुर में नियुक्त किया गया। खुफिया पुलिस के महकमे में उसका नाम सब-इंस्पेक्टरों में था लेकिन वह मैले कपड़े और दुपल्ली टोपी पहने, रोजगार की तलाश में कानपुर के बाजारों में घूम रहा था। कुछ रोज उसने एक मिल के इंजन-रूम में खलासी का काम किया और फिर आयल-मैन हो गया।

सरकार चाहती थी कि हड़ताल किसी तरह न हो इसलिये शहर में दफा १४४ लगी हुई थी। हुक्म था कि जलसा न हो, जुलूस न निकलें। कांग्रेस के नेता कलक्टर साहब की इजाजत से सब-कुछ कर सकते थे। मनाही थी सिर्फ मजदूरों को भड़काने वाले लोगों के लिये, जिनसे सरकार को हड़ताल और शान्ति-भंग का अंदेशा था। फिर भी बस्तियों में, पुरवों में, मकानों की दीवारों पर, सड़कों पर चूने से, कोयले से और गेरू से मजदूरों के नारे लिखे दिखाई देते,

'चोर-बाज़ारी बन्द करो ! मुनाफ़ाखोरों को फांसी दो ! मज़दूरों को मँहगाई भत्ता दो ! रोज़ी रोटी दो ! बिजली पानी लो ! ज़ालिम कानून हटाओ ! मज़दूर नेताओं को छोड़ो !'

उबैदुल्ला कान खोल कर मज़दूरों में फैलती अफ़वाहें सुनता रहता—मँहगाई के लिये हड़ताल ज़रूर होगी, मीटिंग में बात पक्की हो गई है। कल रात मीटिंग में लीडर आये थे। स्वदेशी वाले, म्योर वाले, जटिन वाले सब तैयार हैं। देखें कौन रोकता है ? उबैद मिल में शाहिद के नाम से भरती हुआ था। वह इन बातों में बहुत उत्साह दिखाता मज़दूरों की टोलियों में खूब ऊँचे नारे लगाता। वह सोचता कि गुप-चुप होने वाली मीटिंगों में जा पाये तो असली भेद पाये और फ़रार नेताओं का सुराग मिले। ज़ाहिरा ऐसे नारे लगा कर भी वह मन में सोचता, 'कमीनों का दिमाग कैसा फिर गया है ! अंग्रेज़ के बराबर कुर्सी पर बैठने वाले, इतने बड़े-बड़े नेताओं की सरकार पलट कर अपनी सरकार बनायेंगे ? शरीफ़ अमीर आदमियों का राज उखाड़ कर कोरियों, पासियों, भंगियों और मज़दूरों का राज बनेगा ? कैसी बदमाशी की साज़िश है ! कहते हैं, मज़दूरों की कमेटियाँ मिलें चलायेंगी। मालिक मँहगाई बनाये रखने के लिये दो तिहाई मिलें बन्द किये हुए हैं। इन लोगों की चल जाय तो दुनिया पलट जाय ? ये लोग छिपे-छिपे कितना ज़ोर बाँध रहे हैं। इनके सैंतालीस नेता फ़रार हैं। सब कानपुर में हैं और पता नहीं चलता। पिछली बातों से खतरा और भी बढ़ गया था। इनका एक बड़ा नेता गिरफ़्तार हुआ था तो पिस्तौल, कारतूस भी बरामद हुये थे। पिस्तौल पसली पर रख कर पीछे से कर दें इनका क्या भरोसा है ?' वह अपनी डायरी देने थाने न जाकर, कर्नलगंज में रहने वाले एक खुफ़िया इंस्पेक्टर के यहाँ जाता था।

यों तो उबैद को सब-इन्स्पेक्टरी की तनखाह, ड्यूटी का भत्ता और शाहिद आयलमैन की मज़दूरी भी मिल रही थी लेकिन मुसीबत कितनी थी ! सिर्फ़ आयलमैन की मज़दूरी में ही गुज़ारा करना पड़ता। वह आराम के लिये पैसा खर्च करता तो साथ के लोगों को शक हो जाता। चार महीने बीत गये। वह अपनी तनखाह लेने भी न जा सका। वह सरकार के खज़ाने में जमा हो रही थी। सचमुच बुरा

हाल था। पेट भी ठीक से नहीं भरता था। चबैना और मूँगफली खाते-खाते खुश्की से दिमाग चकराने लगा था। साफ कपड़े पहनने के लिये भी तरस जाता। वह मजदूरों की बाबत सोचता, 'कमीनों का यह तो हाल है, कि रोटियों को तरसते हैं, और करेंगे राज! कमबख्तों का यही तो इलाज है कि खाने को न दें और जूतियाँ मार-मार कर काम लें। हमेशा से कायदा भी यह रहा है।' वह अपनी ड्यूटी की सख्ती से परेशान था। इतनी मुसीबत अंग्रेज के जमाने में कभी न हुई थी।

एक दिन हद हो गई। शाम के वक्त वह थक कर दीवार के कुनिया से पीठ लगा बैठ गया था। इंजीनियर साहब आ रहे थे। वह देख न पाया इसलिये उठ कर खड़ा न हुआ। इंजीनियर साहब ने उसे ठोकर मार कर गाली दी। उबेदुल्ला ने बड़ी मुश्किल से अपना हाथ रोका। मन में तो कहा, 'बेटा न हुआ मैं बाहर, नहीं तो हथकड़ी लगवा कर थाने ले जाता और सब शेखी झाड़ देता? क्या समझते हो अपने आपको? दूसरे जैसे आदमी ही नहीं हैं।' फिर गम खा गया कि बहुत बड़े काम के लिये वह यह सब बर्दाश्त कर रहा है।

रात में दूसरे मजदूरों के साथ दर्शनपुरवा की एक कोठरी में लेटा लेटा वह सोचने लगा 'कम-से-कम मार-पीट, गाली-गलौज तो न होनी चाहिये। मजदूरों में सब कमीने लोग थोड़े ही हैं। और फिर यहाँ पैसा लेकर मजदूरी करते हैं, अपने घर चाहे जो हों।' उसे अपने दो भाइयों की बात याद आ गई। एक अहमदाबाद में और दूसरा रतलाम में मजदूरी करने चला गया था। इसी सिलसिले में वह यह भी सोचने लगा, कि कम-से-कम पेट भरने लायक मजदूरी तो मिले! अब सरकार अपनी है, तो उसे हालत ठीक से मालूम होनी चाहिये। मजदूरों की भी सुनी जाय।

मिल के साथी मजदूरों को शाहिद पर विश्वास हो जाने से उसे हाथ की लिखाई में पर्चे पढ़ने को मिलने लगे। इन पर्चों पर प्रेस का नाम नहीं रहता था। इन पर्चों में सरकार के खिलाफ सरकशी की बातें और जंग का एलान रहता——जो सरकार मुनाफाखोरी, चोर-बाजारी के हथरों को साथी समझती है उसके राज में मेहनत करने

वाली जनता कभी सुखी नहीं हो सकती। व्यापार के नाम पर मुनाफे की लूट केवल किसानों और मजदूरों के राज में खत्म हो सकती है, जब पैदावार मुनाफे के लिये नहीं, जनता की जरूरतें पूरी करने के लिये की जायगी।'''यह पूंजीपतियों का राज जनता का स्वराज्य नहीं, बल्कि सिर्फ हिन्दुस्तानी और विदेशी मुनाफाखोरों का समझौता है। मेहनत करने वालों का स्वराज्य केवल मेहनत करने वालों की अपनी पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी, ही कायम कर सकती है। कम्युनिस्ट पार्टी मेहनत करनेवाली जनता के अधिकारों की रक्षा के लिये इस सरमायादारी हुकूमत के खिलाफ जंग का एलान करती है। आप लोग अपने नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिये व्यक्तिगत और सुसंगठित तौर पर लड़ने के लिये तैयार हो जाइये। पुलिस के दमन का मुकाबिला कीजिये। अपने गली, मुहल्लों और अहातों में पुलिस राज समाप्त करके, मेहनत करने वाली जनता का राज कायम कीजिये।'...आदि आदि। उबेद यह खुली बगावत देख सिहर उठता। दुलीचन्द ऐसे पर्चे शाहिद को पढ़ा कर वापस ले लेता था। शाहिद पर्चों को दो बार, तीन बार पढ़कर शब्दों को याद कर लेने की कोशिश करता, ताकि बिलकुल सही-सही रिपोर्ट दे सके। अकेले में मन-ही-मन उन्हें दोहराता रहता। मन-ही-मन वह सोचता, 'कितनी खुली बगावत है।' और साथ ही यह भी सोचता, 'इन मजदूरों के ख्याल से बातें भी सही हैं। लाखों लोग तो इसी हालत में हैं। उसने एक राज फिसल कर दूसरा राज आता देखा था। वह सोचने लगता, 'क्या तीसरा राज आयेगा?' जैसे इन दोनों राजों में वह एक ही काम करता आया है, वैसे ही वह करता चला जायगा? तब उसे गल्ले और कपड़े के गोदाम छिपाने वालों का पता लगाना होगा, ऐसे आदमियों की पड़ताल करनी होगी जो रिआया को भूखी और नंगी रखते हैं। ऐसे विचारों से कर्नलगंज में इंस्पेक्टर साहब के यहां रिपोर्ट लिखाने जाने का उत्साह फीका पड़ने लगा। अब उसे अपना काम बहुत कठिन जान पड़ने लगा। लेकिन वह बड़ी होशियारी से आँख बचा कर, अपनी रिपोर्ट पहुँचाता रहा। वह सरकार का नमक खा रहा था और खुदा के रूबरू हाकिमे-वक्त का नौकर था।

एक दिन दुलीचन्द ने उससे कहा—"पार्टी के मेम्बर क्यों नहीं बन जाते?"

उबेद मन-ही-मन सिहर उठा। लेकिन प्रकट में कहा—"बन जायेंगे।"

मन में उसने सोचा कि पार्टी के मेम्बर बन जाने पर ही उसे भीतरी षड्यन्त्र का पता चलेगा। दूसरा ख्याल आया कि यह तो अपने ऊपर एतबार करने वालों के साथ दगा होगी। उबेद मन-ही मन बहुत परेशान हुआ। पार्टी का मेम्बर बनने से इनकार करे तो फर्ज में कोताही और खुदा के रूबरू अपनी सरकार से दगा है और पार्टी का मेम्बर बन कर उसका राज दूसरों को दे तो गरीब साथियों और खुदा की खल्क के साथ दगा है। उसने अपने मन को समझाया कि अव्वल तो वह सरकार का ही नमक खा रहा है और खुदा ने सरकार को कायम किया है। वह खुदा के इन्साफ में क्यों शक करे? उबेद तो परेशानी में था लेकिन दुनीचन्द को शाहिद जैसे समझदार, पक्के और जोशीले साथी को पार्टी का मेम्बर बनाने की धुन सवार थी। उसने उसे पार्टी का कार्ड दिलवा दिया और एक रात उसे पक्के साथियों की मीटिंग में ले गया।

मीटिंग में पन्द्रह-बीस साथी थे, दूसरी-दूसरी मिलों के। कामरेड लीडर बता रहे थे—"हड़ताल के मतलब होते हैं, मालिकों की हुकूमत के खिलाफ मजदूरों के मोर्चे को मजबूत करना। मजदूरों का मोर्चा सिर्फ पार्टी के मेम्बरों का मोर्चा नहीं है। मजदूरों का मोर्चा तमाम मेहनत करने वाली जनता का मोर्चा है। पार्टी के मेम्बर इस मोर्चे में राह दिखाते हैं। वे मोर्चे के मालिक नहीं हैं। जो लोग बाबू लोगों से, जमादारों से, पुलिस वालों से अपनी दुश्मनी समझते हैं, वे गलती पर हैं और मजदूरों के मोर्चे को नुकसान पहुँचाते हैं। हमारे दुश्मन सिर्फ वे लोग हैं जो जनता की मेहनत को लूटना अपना हक समझते हैं।...तबके सिर्फ दो हैं—एक लूटने वाला और दूसरा लूटा जाने वाला। नौकर सब लुटने वाले तबके में से हैं। फर्क इतना है कि वे लोग अपनी बिरादरी और समाज को न पहचान कर लूटने वालों के हाथ बिके हुए हैं। उनकी किस्मत मालिकों के हाथ का खेल है।...हमारा मोर्चा मार-पीट, जोर-जुल्म का मोर्चा नहीं है, यह मोर्चा पक्के इरादे से अपने हक को पाने का मोर्चा है।"

कामरेड लीडर के चेहरे पर बढ़ी हुई मूँछें और कतरी हुई दाढ़ी के

बावजूद इंसपेक्टर साहब से मालूम हुए हुलिए से उबेद पहचान गया था कि यह फरार लीडर कामरेड नाथ है। फर्ज़ पूरा करने के लिये उसने इस मीटिंग की और नाथ के बदले हुये हुलिये की रिपोर्ट भी इंसपेक्टर साहब के यहाँ पहुँचा दी। इसके बाद वह दो और मीटिंगों में भी गया। बड़ी भारी मुकम्मल हड़ताल की तैयारी के लिये गुप्त मीटिंगें बार बार हो रही थीं। इंसपेक्टर साहब का हुक्म था कि ऐसी मीटिंग का समय और स्थान मालूम कर, उबेद वक्त रहते उन्हें खबर दे। लेकिन उबेद को मीटिंग का पता ऐसे समय लगता कि खबर दे आने का मौका ही न रहता।

पाँचवीं गुप्त मीटिंग हड़ताल के लिये आखिरी बातें तय करने के लिये की जानी थी। मिल से छुट्टी होते ही शाहिद को कहा गया कि ग्वालटोली के चार साथियों, प्यारे, नोखन, लेखू और नब्बन को खबर दे आये। ग्वाल टोली जाते हुए उबेद कर्नैलगंज में खबर देता गया। इस बात के नतीजे से वह खुद घबरा रहा था। लेकिन खुदा के रूबरू वह अपने फर्ज़ से कोताही कैसे करता ? इस मानसिक परेशानी में वह बार बार अल्लाह को गुहराता कि वही उसकी मदद करे, उसे गुमराह होने से बचाये।

एक हरीकेन लालटेन की रोशनी थी। अलगनियों पर कपड़े और घर का सामान लाद कर सब लोगों के बैठने के लिये जगह बनाई गई थी। कानपुर के एक लाख मजदूरों और शहर के करोड़-पतियों और सरकार में जंग का फैसला हो रहा था—पिकेटिंग के समय कौन लोग देख-भाल करेंगे, लाठीचार्ज होने पर क्या किया जाय ? गैरकानूनी जुलूस निकाला जाय या नहीं ? दूसरे मजदूरों के दिल से खतरा दूर करने के लिए कौन लोग पहले मार खायें और गिरफ्तार हों ? खयाल रखा जाय कि इधर से लोग भड़क कर ईंट पत्थर चलाकर पुलिस को गोली चलाने का मौका न दें।

आधी रात के समय मीटिंग हो रही थी। तीन लीडर आये हुये थे। हड़ताल के लिये कामरेड नाथ आखिरी बातें समझा रहे थे।

उबेद के कानों में साँय साँय हो रहा था। उसका कलेजा धक-धक कर रहा था। वह लगातार बीड़ी-पर बीड़ी सुलगा रहा था।

दूसरे कई लोग भी बीड़ी पी रहे थे। लीडर कामरेड मौलाना ने भूरी-भूरी आँखें निकाल, डाँट कर कहा—"बीड़ी बुझा दो सब लोग। क्या बेवकूफी करते हो ? देखते नहीं हो, दम घुट रहा है ? तुम लोग क्या जंग लड़ोगे, जो एक घंटे तक बिना बीड़ी के नहीं रह सकते !'

उबेद बीड़ी फर्श पर दबा कर बुझा रहा था। दूसरे लोगों ने भी बीड़ी बुझा दी। उसी समय पड़ोस से ऊँची पुकार सुनाई दी—"भूरे ! ओ भूरे !"

मौलाना की पीठ त गई। "पुलिस आ गई !" उन्होंने कहा। वे तुरन्त कागज समेटने लगे, और बोले—'जगन कामरेडों को निकाल दो। मोती दरवाजे पर डट जाओ, भीतर न आने देना।'

गड़बड़ मच गई। शाहिद का दिल और भी जोर से धड़कने लगा। दस सेकिंड भी नहीं गुजरे थे कि दरवाजे पर से धमकी सुनाई दी—"दरवाजे खोलो ! तोड़ दो दरवाजा !" पिस्तौल की दो गोलियाँ चलने की भी आवज सुनाई दी—"दरवाजे खोलो ! तोड़ दो दरवाजा !" पिस्तौल की दो गोलियाँ चलने की भी आवाज हुई। सादे कपड़े पहने पुलिस थी। पुलिस और मजदूरों में हाथापाई हो रही थी। तीन गोलियाँ और चलीं। वर्दी वाली पुलिस भी आ गई।

बारह आदमी गिरफ्तार हो गये। दुलीचन्द के घुटने में और नब्बन की बाँह के डौले में गोली लगी थी। दूसरे लोगों को भी चोटें आई थीं। तीनों लीडर कामरेड निकाल दिये गये थे। पुलिस के लोगों में शाहिद को कोई भी नहीं पहचानता था। उसने भागने की कोशिश भी नहीं की। वह भी गिरफ्तार हो गया। मुहल्ले के बाहर चार पुलिस लारियाँ खड़ी थीं। तीन-तीन गिरफ्तारों को पुलिस के साथ इनमें बन्द किया गया, और बड़ी कोतवाली पहुँच गये। सब लोगों को अलग-अलग बन्द कर दिया गया।

अगले दिन चौथे पहर कर्नलगंज वाले इंस्पेक्टर साहब और एक उनसे बड़े अफसर आये। उन लोगों ने अब्दुल्ला की कारगुजारी की तारीफ की। उन्होंने कहा—"बड़े बड़े मच्छ तो जाल तोड़ कर निकल गये। कितने बदमाश हैं यह लोग ! फिर भी इनके बारह खास आदमी हाथ आ गये हैं। फिलहाल इनकी यह हड़ताल तो न हो

सकेगी ।" उन्होंने उबेदुल्ला को समझाया—"इन बदमाशों पर मामला चलाया जायगा कि इन्होंने सरअन्जाम में पुलिस के काम में अड़चन डाली, पुलिस से मारपीट की, एक दारोगा और चार कांस्टेबिल को जख्मी किया । लेकिन गवाही सब पुलिस की ही है । इसलिये उबेद को सरकारी गवाह बनना पड़ेगा । पन्द्रह बीस दिन की ही तो बात है । जेल में सब आराम का इन्तजाम हो जायगा । घब डाने की कोई बात नहीं है । कल उन सब लोगों को जेल की हवा-लात में भेज दिया जायगा । उबेद के लिए जेल में अलग इन्तजाम हो जायगा, दो-एक रोज में बयान तैयार हो जायगा, और उबेद को वह बयान मैजिस्ट्रेट के सामने देना होगा । बड़े साहब ने कहा है कि इस मामले से छूटने पर उबेद को किसी थाने का इन्चार्ज बना कर पच्छिम में भेज देंगे ।

सब गिरफ्तार दंगाइयों को पुलिस से फौजदारी करने की दफा में मुलजिम बनाकर जेल हवालात में भेज दिया गया । उबेद भी जेल भेज दिया गया । लेकिन उसे अलग कोठरी में रखा गया था । उस पर खास वाडर की ड्यूटी थी कि उससे कोई मिलने न पाये । सिर्फ पानी देने वाला, खाना पहुँचाने वाला, अस्पताल की कमान के कैदी और भंगी उसकी कोठरी में आते जाते थे । इन्हीं में से कोई उसे खबर दे गया कि उसके बाकी साथी कह रहे हैं, कि शाहिद को भी उनके साथ रखा जाय और उसे साथ न रखा जाने पर भूख-हड़ताल की तैयारी है ।

उबेद परेशान था कि क्या करे । उसने कितने ही मुश्किल काम किये थे लेकिन ऐसी मुसीबत कभी न आई थी । कचहरी में खड़े होकर वह इन लोगों के खिलाफ बयान कैसे देगा ? कैसी कैसी गालियाँ वे लोग उसे देंगे ? और फिर जेल वे लोग किस बात के लिये जा रहे हैं ?

तीसरे दिन उसकी कोठरी में आने जाने वाले कैदियों की आँख बदली हुई दिखाई दीं । उस पर ड्यूटी देने वाले जमादार की आँखें बचाकर, एक गैरपहचाना कैदी उसे गाली देकर और उसकी ओर थूक कर कह गया—"साला मुखबिर है ।"

उसी दिन शाम को मैजिस्ट्रेट उसका बयान कलमबन्द करने के

लिए आए। मैजिस्ट्रेट ने उससे कहा -"खुदा को हाजिर-नाजिर जान कर हलफिया सच बयान दो !"

शाहिद ने होंठ दबा लिये।

मैजिस्ट्रेट ने पूछा--"तुम्हारा नाम शाहिद है ?"

वालिद का नाम ?"

शाहिद चुप रहा।

मैजिस्ट्रेट ने धमकाया—"बोलते क्यों नहीं ?"

"साथ खड़े सी० आई० डी० के इंसपेक्टर साहब ने भी कहा — बयान दो अपना। शाहिद ने जवाब दिया --'मेरा नाम शाहिद नहीं, मैं खुदा को रूबरू जान कर हलफिया झूठ नहीं बोल सकता।"

मैजिस्ट्रेट ने आश्चर्य से अँग्रेजी में कहा 'यह क्या तमाशा है।'

सी० आई० डी० के इंस्पेक्टर ने उबेद को समझाया —"अरे इसमें क्या है ? यह तो जाब्ते की बात है। कचहरी में खुदा थोड़े ही हाजिर हो सकते हैं इसमें क्या रखा है ?

उबेद ने हकलाते हुए कहा—"हजूर नौकरी करता हूँ, जान दे कर सरकार का नमक हलाल कर सकता हूँ। पर ईमान नहीं बेच सकता। उसने छत की तरफ हाथ उठाया। 'वह दुनिया भी तो है।'

मैजिस्ट्रेट साहब ने इंसपेक्टर साहब को डाँट दिया—यह सब क्या फरेब है ? मैं ऐसा बयान नहीं लिख सकता। मुझे रिपोर्ट में यह सब लिखना होगा।

इस परेशानी में बयान न लिखा जा सका।

अगले दिन उसे समझाने के लिये दूसरे अफसर आये। बोले —"ऐसी नमक-हरामी, गद्दारी करोगे तो सात बरस की नौकरी, कारगुजारी सरकार के यहाँ जमा तनख्वाह तो जब्त होगी ही साथ ही सरकार की नौकरी में रह कर बगावत करने के जुर्म में फांसी काले पानी की सजा तक हो सकती है।"

उबेद ने जवाब दिया—"सरकार मालिक हैं। मैंने गद्दारी नहीं की, नमकहरामी नहीं की, लेकिन खुदा के रूबरू दरोगहलफी करके आकबत नहीं बिगाड़ सकता। यहां आप मालिक हैं, वहां वो मालिक है...।"

उबेदुल्ला का मामला आई० जी० साहब के यहां गया हुआ था। इसी बीच दूसरे ग्यारह आदमियों पर पुलिस से फौजदारी करने का मामला चल रहा था। पुलिस ही मुद्दई थी और पुलिस ही गवाह। गवाही माकूल नहीं थी। मामला गिर जाने की पूरी आशा थी। मुल-जिम लारियों में नारे लगाते हुये अदालत आते-जाते थे। मुलजिम के वकील बार-बार शाहिद को अदालत में पेश करने की दरखास्तें दे रहे थे। पुलिस की तरफ से जवाब था कि शाहिद पर से यह फौज दारी का मामला हटा लिया गया है। वह दूसरे मामले में मफरूर था। उसकी तहकीकात अलग से हो रही है।

मजदूरों को विश्वास था कि कामरेड शाहिद को सरकारी गवाह बनाने के लिये पीटा गया लेकिन उसने अपने साथियों से गद्दारी करना मंजूर नहीं किया। पुलिस उसे परेशान कर रही है। वे नारे लगाते थे—"कामरेड शाहिद जिन्दाबाद! कामरेड शाहिद को रिहा करो!"

जेल वालों की चौकसी के बावजूद यह खबर भी उबेद तक पहुंची। उसकी आंखें खुशी से चमक उठीं। उसने अल्लाह को याद कर, दुआ के लिये हाथ फैलाकर कहा—"या खुदा शुक्र तेरा! एक बार तो तेरे नाम ने जिन्दगी में मदद की! यही बहुत है।"

५

प्रतिष्ठा का बोझ —

समझ लीजिए, उसका नाम केवलचन्द है।

केवलचन्द को अपने ही शहर अम्बाला में, 'मिलिटरी इन्जिनियरिंग सर्विस के दफ्तर में नौकरी मिल गई थी। १९४१ में भत्ता मिल कर ८५) की नौकरी मिल जाने से सन्तोष हुआ था। अम्बाला में उसका अपना छोटा मकान है। परन्तु १९४६ में जब सब चीजों के दाम चौगुने हो गए तो १०५) माहवार मिलने पर भी हाथ खाली ही रह जाते, कुछ बनता ही नहीं। सफेदपोशी निबाहना भी सम्भव नहीं हो रहा था।

अम्बाला के मिलिटरी इन्जिनियरिंग सर्विस के कुछ लोगों ने आन्दोलन चलाया कि उनका महगाई भत्ता बढ़ना चाहिए, उन्हें क्वार्टर मिलने चाहिए, उनके साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार होना चाहिए। केवलचन्द भी इस आन्दोलन में सम्मिलित हुआ। इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि आगे बढ़ कर बात कहने वाले लोग बर्खास्त होगए। केवलचन्द के घर की अवस्था खराब थी। पिता की मृत्यु हो चुकी थी, बूढ़ी माँ को दमा था, कुछ ही महीने पहले उसका विवाह हुआ था और पत्नी आते ही बीमार रहने लगी थी। कहने को मकान अपना जरूर था परन्तु महाजन के यहां रेहन था। उसने आन्दोलन में भाग लेने के लिए मुआफी माँगली। वह नौकरी से बर्खास्त तो नहीं हुआ परन्तु उसकी बदली लखनऊ में हो गई।

लखनऊ में रहने लायक जगह ढूंढते-ढूंढते शहर भर की सड़कों बाजारों, गलियों, मुहल्लों और अहातों से परिचित हो गया। शहर

की भिन्न भिन्न स्तर की बस्तियों का जीवन उसने देखा। कोठियों बँगलों के भाग में जगह ढूँढ़ना व्यर्थ था। वह बड़े लोगों, मालिक लोगों की जगह थी। वह शहर की बेरौनक जगहों में, जहाँ लोग मकान पर मकान बनाकर आकाश में टँग कर पिंजरों में रहते थे, वहाँ ही जगह ढूँढ रहा था। वह ऐसी जगहों में भी रहने के लिए तैयार न था जहाँ शहर भर का मल धोने वाले धोबी, मेहतर या बीकानेरी मोची सड़क के किनारे ही धुँआ भरी कोठड़ी में जीवन के सब काम पूरे करते रहते हैं, जहाँ दहलीज के बाहर नाली में ही मल मूत्र से मुक्ति पा दहलीज के भीतर चूल्हे पर पेट के लिये अन्न रींधता रहता और वहीं चूल्हे में उपलों से उठते धुएँ में, कच्चे चमड़े और रेह की दुर्गन्ध में मनुष्य के जीवन की सृष्टि और अव-सान की सब क्रियायें पूरी होती रहती हैं। वह लोग शहर का गन्दा आँचल छोड़ कर इसलिये नहीं जा सकते कि शहर के मालिक सम्पन्न लोगों को अपनी सेवा कराने के लिये इन लोगों की आवश्यकता है। केवल को इन लोगों के ऐसा अमानुषिक जीवन स्वीकार करने पर क्रोध आया—यह लोग ऐसा जीवन क्यों स्वीकार करते हैं, क्यों जालिमों की सेवा करते हैं? उत्तर था—तुम क्यों मि० इ० म० की नौकरी करते हो? यह लोग और जायँ कहाँ? खायें क्या? इनके लिये यही विधान है। जैसे केवलचन्द के लिये विधान था कि उसे दफ्तर में बैठ कर 'ड्राफ्टमैनी' करनी होगी और लखनऊ शहर में ही रहना होगा।

मकान न मिलने की समस्या ने उसके मन में मकानों का मन माना किराया वसूल करने वालों के प्रति और जब दूसरों को सिर छिपाने की जगह नहीं मिल रही है तब हर काम के लिये एक-एक पूरा कमरा रखने वालों के प्रति और अपने मकानों के सामने बड़े बड़े बाग लगा कर जगह घेर लेने वालों के प्रति एक कटुता भर दी। जहाँ भी रहने लायक जगह मिलती, किराया माँगा जाता ५०-६०)। यह थी किराये की लाठी जिसके बल पर उसे खाली जगह में घुसने नहीं दिया जा रहा था।

आखिर उसे फतेगंज की एक गली में जगह मिली। हाल ही में गली में रहने वाले एक पण्डित जी के, रेलवे में नौकरी करनेवाले

पुत्र की बदली मुगलसराय में हो गई थी। वहां क्वार्टर मिल जाने के कारण पण्डित जी का पुत्र पत्नी को लेकर चला गया। पुत्र और पुत्रवधू के सोने की जगह, ऊपर की टीन से छाई बरसाती खाली हो गई थी। पंडित जी ने दो मास का किराया पेशगी लेकर वह बरसाती केवलचन्द्र को ३०) मासिक पर दे दी।

केवलचन्द्र उस बरसाती में अपना बिस्तर और बकसा रख एक खाट खरीद कर लौटा ही था कि उसे गली में, ऐरे-गैरे गुण्डों को बसा लेने के विरोध का कोलाहल सुनाई दिया।

पंडित जी की बरसाती से प्रायः आठ दस हाथ जगह छोड़ कर तिमंजिले मकान की पक्की ईंटों की दीवार खड़ी थी। शायद पंडित जी के विरोध के कारण ही इस दीवार में खिड़कियां नहीं बनाई जा सकी थीं। इस ऊंचे मकान की दीवार में इस ओर खिड़कियां खुलने से पंडित जी के मकान का और साथ के मकानों का पर्दा बिगड़ता था। ऐसे ही कारणों से तो पड़ोस बैर का कारण बन जाता है।

इस तिमंजिले मकान के तीसरी मंजिल के छज्जे से एक प्रौढ़ा स्थूल शरीर महिला मुंह और आंखें फैला कर और हाथ हिलाहिला कर बहुत ऊँचे स्वर में पुकार रही थी—"आग लगे ऐसी कमाई में, आग लगे ऐसे लालच में! इन लोगों की ईंट से ईंट बज जाय, मुहल्ले में सांड लाकर बसा रहे हैं, मुहल्ले की बहू-बेटियों के पर्दे और इज्जत का कोई खयाल नहीं।"

तंग गली के दूसरी ओर मकान की खिड़की के किवाड़ों की आड़ से भी एक सांवली दुबली सी प्रौढ़ा बोल उठी—"न जानें न बूझें, गली में लौंडे भरे जा रहे हैं। अपनी बहू को तो कसाई के लिये परदेस भेज दिया, दूसरों पर आफत कर रहे हैं। सीधा खाने वाले की जात को इज्जत का क्या खयाल; पैसे पर जान देते हैं, आग लगे ऐसे लोभ में।" इस विरोध के बाद महिला ने गली में बरसाती की ओर खुलने वाली अपनी खिड़कियां भीषण आहट से बन्द कर दीं। बांई ओर के मकान से भी विरोध हो रहा था।

भगवान के इजलास में होती इस पुकार पर एक तरफा डिगरी हो जाने की आशंका में पंडितानी भी अपने दरवाजे पर आ खड़ी हुईं। वस्त्रहीन सीने पर एक हाथ से धोती का आंचल रखे, दूसरी

बांह फैलाकर पंडितानी दुहाई देने लगी—"अपने मकानों में चार-चार किरायेदार भर रखे हैं दूसरों को जो पैसा आता देख जिनके कलेजे में आग लगती है उनसे भगवान समझें। इन्हीं कर्मों से तो जवानी में रांड हुई। दूसरों का पैसा खाकर जो भाग गया है वह कभी जिन्दा न लौटे।" पंडितानी ने तिमंजिले मकान की मालिक खत्राणी की जवानी के अपकर्मों का प्रचार कर दिया।

सामने गली पार के मकान के एक छज्जे में एक बहू कुछ उधेड़-बुन कर रही थी। उसने उठकर पर्दे के लिये जंगले पर एक चादरा डाल लिया।

बांई ओर के मकान से हाथ में छतरी लिये एक बाबू दफ्तर जाने की पोशाक में निकले। पान का बीड़ा भरे मुंह से उन्होंने कलह करती स्त्रियों को आश्वासन दिया—"पंडित को लौटने दो। सब कुछ साफ हो जायगी। गृहस्थों के मुहल्ले में ऐरे-गैरे लोगों का बसना कैसे हो सकता है। अकेले रहने वालों के लिये बाजार में बैठकें हैं, होटल हैं।"

केवलचन्द को स्वयं दफ्तर जाने की जल्दी थी। इस विरोध से उस के हाथ-पांव उलझ रहे थे। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। ताला लगाकर सिर झुकाये गली से बाहर हो रहा था। खत्राणी ने उसे लक्ष्य कर विरोध का स्वर ऊंचा कर दिया।

संध्या समय केवलचन्द, संकट को जितनी देर हो सके टालने के विचार से विलम्ब से मकान पर लौटा। अपनी सज्जनता के प्रति विश्वास पैदा करने के लिये वह आंखें नीचे किये था। और इस घर से उस घर में आती-जाती, जर्जर और मैली धोती में दृष्टि की पहुँच से अपर्याप्त रूप से रक्षित शरीर नारियों को पर्दा कर लेने के लिये सचेत करते जाने के लिये वह खांसता भी जा रहा था।

अपनी बरसाती में पहुँच वह अपनी खाट पर लेट गया। उसके आते ही उसके विरोध का विवाद फिर उठा खड़ा हुआ। खत्राणी ने तिमंजिले से पुकार कर कहा—"आ गया नया जवान खसम! हाथ थाम कर ले जा। किसी बाल बच्चेदार को रखेगी तो वह इसे खिलायेगा कि अपने घर बार को। अब दो खसम हो गये, जल्दी हवेली खाली हो जायगी।"

इस ललकार से पंडितानी बाहर निकल आई और खत्रानी के कुकर्मों का विज्ञापन कर उसका इतिहास बखानने लगी। केवलचन्द उर्दू और किताबी, हिन्दुस्तानी जानता था। लखनऊ की स्थानीय बोली समझने में उसे उलझन हो रही थी परन्तु इस पहली ही संध्या उसे अपने पड़ोसियों का पर्याप्त परिचय मिलता जा रहा था।

अंधेरा हो जाने और सब मकानों में रोशनी जल जाने पर केवल ने भी एक मोमबत्ती जला ली। नारी युद्ध का कोलाहल कुछ समय पूर्व ही दब चुका था। नीचे गली से पुकार सुनाई दी 'ए नये बाबू साहब! जरा नीचे तशरीफ लाने की तकलीफ गवारा कीजिये।"

गली में पुरुषों का एक प्रतिनिधि मण्डल उपस्थित था कोई प्रश्न किये बिना उन लोगों ने गृहस्थों के मुहल्ले में अकेले पुरुषों के आकर रहने के अनौचित्य पर अपना मत प्रकट किया। केवलचन्द पंडित को पहले ही अपना परिवार ले आने की बात कह चुका था। वही आश्वासन उसने इन लोगों के सामने भी दोहराया कि तीन चार दिन की छुट्टी मिलते ही वह परिवार को ले आयगा। इस पर उसके जात-पांत वंश और घर की पूछ-ताछ हुई और प्रतिनिधि मण्डल उसे सबकी इज्जत का खयाल कर शीघ्र ही स्त्री-पुत्र को ले आने की नसीहत कर चला गया।

केवल ने खाट पर लेट विश्राम की सांस ली। परिवार को ले आने का आश्वासन तो उसने दे दिया था परन्तु दो खाटों के क्षेत्रफल के बराबर जगह में पूरे परिवार को कैसे बैठाये और छोड़ आये तो किसे? चूल्हा कहां बनेगा? और जीने पर से पानी ढोते ढोते उसकी जान तबाह हो जायगी।

पुरुषों के संतुष्ट हो जाने पर भी नारी समाज में विरोध का आन्दोलन बिलकुल नहीं दब गया। विशेष कर सिमंजिले मकान के ऊपर वाले छज्जे से। परिणाम प्रायः स्त्रियों में कलह होता और केवल को गली के इतिहास के रहस्यों का परिचय होता जाता। उसे मालूम हो गया कि पंडित के मकान से लगता तिमंजिला मकान विधवा खत्रानी का है। उसमें दो किरायेदार हैं। खत्रानी दो ही सन्तान के बाद बीस-इक्कीस बरस की आयु से विधवा है। उसकी लड़की मर चुकी है। लड़का कम उम्र में ही सट्टा खेलने लगा था।

ब्याह होते ही कहीं बहुत बड़ा घाटा गल्ले के सट्टे में खा बैठा और लेनदारों के भय से भाग गया। खत्राणी के दो और भी मकान हैं लेकिन लेनदारों को उसने अंगूठा दिखा दिया। चुपके चुपके गहना रख कर रुपया सूद पर देती है। बहू उसकी बड़ी सुन्दर है। वह सास से दो कदम आगे जायगी। सास उसे किसी के यहां आने जाने नहीं देती। खुद शहर में गश्त करती है और बहू को भीतर कर ऊपर से ताला लगा जाती है।

विरोध का पहला उबाल बैठ गया था। उसके आ जाने से पड़ोस के मकानों में सुरक्षित नारी सौन्दर्य के प्रति आशंका का कोहरासा उठ खड़ा हुआ था. उसने केवल के मन में उत्सुकता प्राप्त कर दी थी। गली के लोग केवल को सहने लग गये थे। पड़ोसी उसे अपने कार्ड पर राशन और चीनी ला देने के लिये कहने लगे। दूसरी सहायता लेने लगे। अब बहुत कुछ ताक झांक भी करने लगा। सामने के मकान की खिड़कियां अब उतनी सख्ती से बन्द न रहतीं। खत्राणी के मकान में स्त्रियां छज्जे के जंगले पर भीगी धोतियां सूखने के लिये फैलाने आतीं तो केवल की खिड़की की ओर भी नजर डाल जातीं। बीच की मंजिल की बंगालिन आंचल अस्त व्यस्त होने पर भी बिना झिझके छज्जे पर बैठी तरकारी छीलती रहती। यों दिखाई दे जाने वाली स्त्रियां प्रायः पीली सांवली और मुर्झाई हुई थीं। अलबत्ता सामने एक बहू की आंखें बड़ी नशीली थीं और उसका चेहरा भी खासा और नमकीन था। केवल को उस ओर देखने की विशेष रुचि न होती थी। उस ओर दृष्टि जाने पर वह वितृष्णा से मुस्करा देता—"क्या इसी के लिये इतना शोर था।"

खत्राणी का विरोध शांत नहीं हुआ था। वह पड़ोस की, और अपने किरायेदारों की बहुओं को पंजाबी की आशंकामय उपस्थिति से सतर्क करती रहती। उसकी अपनी बहू यदि क्षण भर को भी छज्जे पर ठिठक जाती तो खत्राणी हाथ से छूट गई कांसे की थाली की तरह इतने जोर से झल्ला उठती कि केवलचन्द की दृष्टि छज्जे की ओर उठे बिना न रहती। दृष्टि उधर उठती तो वहीं टिक जाती। बहू के दृष्टि के ओझल हो जाने पर केवल के हृदय से एक गहरी सांस उठ आती जैसे मांस में से कांटा खींच लिया जाने पर एक पीड़ा सी होती है।

केवलचन्द कवि हृदय न था। खजांची की बहू लछमी को देख कर उसे मेघों के बीच से झांकते चांद, ओस से धुले चम्पा के फूल, तालाब में लहलहाते कमल की उपमा याद न आई। उसे ऐसा जान पड़ा कि जौहरी की दूकान में डिबिया खुल जाने पर रुई में लिपटे किसी मोती पर उसकी दृष्टि पड़ गई हो। लछमी का रंग उसे ऐसा जान पड़ा जैसे केले का पेड़ फाड़ कर भीतर से सफेद गहा डंडा निकाल लिया हो! उसकी बड़ी-बड़ी काली आंखें चेहरे पर खूब चमकती थीं और माथे पर लाल बिन्दी ऐसी जान पड़ती कि किसी ने हाथी दांत में लाल नग जड़ दिया हो। वह छज्जे पर आती तो उड़ती-उड़ती एक नजर केवलचन्द की बरसाती की खिड़की के भीतर भी डाल देती। केवल को बैठा देखती तो भय से भाग नहीं जाती।

केवलचन्द के उस गली में आने पर जैसा विरोध हुआ था उससे कोई अनुचित कार्य करते समय भय के लिये काफी कारण था। और फिर खजांची के ही घर? यह ऐसे था कि बाघिन की मांद में जाकर उसके बच्चे पर हाथ डालना। परन्तु उसकी आंख खजांची के छज्जे की ओर बरबस उठ ही जातीं और बहू को पा वहीं टिकी रहती। दो सप्ताह भी न बीते थे कि लछमी से उसकी आंख लड़ गई। लछमी ने देखा और खड़ी रही। तीन चार दिन बाद आंखें मिलने पर लछमी ने मुस्करा दिया। उस समय केवल यह भेद नहीं कर पाया कि फूल झड़ गये या मोती बरस गये परन्तु वह जैसे बेबस होकर अपनी खाट से उछल पड़ा—परिणाम कि चिन्ता न कर वह उसकी ओर देखने लगा। उसके समीप पहुँच सकने के लिये वह कुछ भी कर गुजरने के लिये तैयार हो गया।

लछमी प्रायः बुनाई या कढ़ाई का काम ले छज्जे में केवल की बरसाती की ओर आ बैठती। गज भर ऊँचे लोहे के ढले हुये छज्जे की आड़ में होने के कारण सामने और इधर उधर के मकानों की खिड़कियों से वह दिखाई न पड़ती। छज्जे के छेदों के समीप आंख लगाये वह केवल की ओर देखती रहती। छेदों के समीप होने के कारण वह तो केवल की प्रत्येक गति विधि को स्पष्ट देख पाती परन्तु केवल इतना ही जान पाता कि लछमी जंगले के पास, उसके सामने बैठी है। कभी वह ऊपर की खुली छत पर जा, दीवार पर से कुछ नीचे

फेंकने के बहाने झांक कर मुस्कान की एक झलक केवल को दिखा जाती। केवल तड़प कर रह जाता।

केवल का मन चाहता कि अपनी बरसाती में ही बैठा रहे, दफ्तर न जाय। लछमी को सामने मुस्कराते देख उसका मन ऐसे छटपटा उठता कि सिर फूटने की चिन्ता न कर सामने के छज्जे पर चढ़ जाय। उसकी आंखों ने दीवार की ईंटें गिन हिसाब लगा लिया था कि उसकी छत से ऊपर उठने वाली, खत्राणी के मकान की दूसरी मंजिल चौदह फुट ऊंची है और तीसरी बारह फुट। छज्जे की ऊंचाई चार फुट होगी। छः फुट तो वह खाट रखकर चढ़ जायगा। शेष आगे आठ ही फुट······क्या है ? दफ्तर में नीले कागज पर सफेद स्याही से ड्राफ्ट्समैनी करते समय उसे खत्रानी के छज्जों की बनावट ही आंखों के सामने नाचती दिखाई देती रहती।

नवम्बर का महीना जा रहा था। ऊपर टीन की छत होने के कारण केवल की बरसाती रात में खूब ठर जाती। पड़ोस की गलियों में ब्याह हो रहे थे। ठंड से नींद न आने पर वह स्त्रियों के गाने सुनता रहता और कुछ कुछ समझ कर मुस्कराता जाता। वह लखनऊ आया था तो गरमी का मौसम था। बोझ से बचने के लिये वह लिहाफ साथ न लाया था। दिन में तो उसे जाड़ा नहीं मालूम होता परन्तु रात में नींद टूट जाती। उस समय सोचता—छज्जों पर से चढ़ लछमी के पास पहुँच जाय। एतवार की छुट्टी के दिन दोपहर में टीनों से छनती गरमी में लेटा वह लगातार लछमी के छज्जे की ओर देखता रहा। लछमी भी लाल ऊन और सिलाइयां लिये छज्जे में आ बैठी थी। थोड़ी-थोड़ी देर में उसकी ओर देख कर मुस्करा देती।

केवल सोच रहा था—"मोटी (परोक्ष में खत्राणी को गली के लोग इसी नाम से पुकारते थे) इस समय चादर ओढ़ कर शहर घूमने गई होगी, किसी के यहाँ शादी ब्याह में गई होगी; तभी तो लछमी इतनी निधड़क इतनी देर से बैठी है। सांकल लगा कर गई होगी। वह छज्जे से जा सकता था। परन्तु दोपहर थी, खिड़कियों से लोग झांक लेते। लछमी से पहले बात हो जाय तब तो ? बात कैसे हो ?

मंगलवार दफ्तर से लौटते समय वह कहीं कुछ देर के लिये रुक गया। होटल से खाना खा सूर्यास्त के समय गली में लौट रहा था

कि उसने खत्राणी और उसके पीछे बहू को धुस्से ओढ़े, हाथों में चमचमाते लोटे लिये घर से निकलते देखा। लक्ष्मी से उसकी आंखें चार हुईं परन्तु मुस्काये बिना दृष्टि नीची कर ली। दुबली पतली हाथी दांत की मूरत लक्ष्मी केवल को दूर से जैसी दिखाई देती थी, समीप आने पर उससे दस गुनी सुन्दर लगी। और जैसे लक्ष्मी के शरीर की सुगन्ध सांस में जा उसके हृदय में भर गई। उसका खून उबल उठा।

वह चुपचाप अपनी बरसाती में चढ़ गया। सोचा, सास-बहू अमीनाबाद में हनुमान जी के मन्दिर जा रही हैं। वह लौट पड़ा। और तेज कदमों से अमीनाबाद की ओर चला। बाजार में कुछ ही दूर जाकर उसकी आंखों ने दोनों को ढूंढ़ लिया। उन्हें निगाह में रखे वह बाजार के दूसरी ओर चलने लगा।

मन्दिर के बाहर प्रसाद की दुकानों पर बेहद भीड़ थी। सासने बहू को ठेले-धक्के से बचाने के लिये एक ओर खड़ा कर दिया और प्रसाद लेने भीड़ में धंस गई। बहू माथे पर चार अंगुली भर आंचल खींचे, मेंहदी से रंगी चम्पई हथेली पर चमचमाता लोटा टिकाये एक ओर खड़ी रही। उसकी बड़ी बड़ी आंखें भीड़ पर तैर रही थीं।

केवल सास को ताड़ने के लिये आंखें भीड़ की ओर रखे लक्ष्मी के समीप बढ़ आया। बहू ने हल्के से होंठ दबा लिये।

केवल धीमे से बोला—'प्यार करती हो?'

लक्ष्मी ने आंख झपक अनुमति दी।

'मिलोगी नहीं?'

बहू ने फिर आंख झपकी।

'कब?'

'आज रात अम्मा गीतों में जायेंगी।'

'आयें?'

'किरायेदार हैं।'

'छज्जे से आ जायें?'

बहू ने कहा—'किरायेदार जल्दी सो जाते हैं।'

केवल टल गया।

लौट कर केवलचन्द दुविधा में था। खत्राणी का जीना उसने

देखा न था और छज्जे से चढ़ने में गिरने का काफी भय था। लौटते समय उसने आंखों ही आंखों खत्रानी के जीने का सर्वे किया और खाट पर बैठ छज्जों की बनावट और दीवार के साथ लगे पानी के नल पर लगी कीलों की दूरी देखता रहा। उसकी दृष्टि नीचे गली में बराबर लगी थी कि सास कब जाती है। आठ बजे उसने सास को जाते देखा। उसी समय लछमी छज्जे पर दिखाई दी और उसने सिर पर आंचल सम्भालने के बहाने हाथ दिखा अभी ठहरने का संकेत कर दिया। केवल स्वयं भी दूसरी मंजिल में बत्ती बुझ जाने की प्रतीक्षा में था। इन कमरों के भीतर से छज्जे पर प्रकाश आ रहा था। सामने के मकानों में खिड़कियां सर्दी के कारण मुंदी थीं। केवलचन्द्र बाहर अंधेरी रात के पाले में बेचैनी से घूम-घूम कर प्रतीक्षा कर रहा था।

घण्टाघर से नौ का घण्टा बजने पर दूसरी मंजिल की बत्ती, बुझ गई। केवल ने पन्द्रह मिनट और प्रतीक्षा की। इस बीच लछमी कई बार छज्जे पर घूम गई।

केवल सवा नौ बजे खाट से उठ बाहर आया। खाट खत्रानी के मकान की दीवार से खड़ी कर वह चढ़ने को ही था कि ऊपर से कुछ उसके सिर पर टपका। केवल ने ऊपर झांका। अंधेरे में लछमी के गोरे हाथ ने अभी और ठहरने का संकेत कर दिया।

केवल बिना आहट किये खाट उठा भीतर लाकर छज्जे की ओर देखता प्रतीक्षा करने लगा। घण्टाघर से साढ़े नौ की 'टन' सुनाई दी। उस समय लछमी ने संकेत किया—आ जाओ!

केवल की खाट दूसरी मंजिल की ऊंचाई में आधे से कुछ ही ऊपर पहुंची परन्तु उसने खाट के ऊपर की पटिया पर पांव रख, बांह फैला तीसरी मंजिल के जंगले में नीचे के छेदों में अंगुलियां फंसा लीं और शरीर को तोल लोहे के एक खम्बे की मुंडेर पर पांव टिका लिया। यह सहारा पाकर उसका दूसरा हाथ जंगले के सिरे पर पहुँच गया। वह उचक कर जंगले के भीतर आ पहुंचा। लछमी उसे बांह से थाम तुरन्त भीतर ले गई।

केवल को पसीना आ गया था और उसका कलेजा धकधक कर रहा था, सांस धौंकनी की तरह चल रही थी। परन्तु उससे अधिक

उग्र थी उसकी चाह। उसने लछमी को बाहों में इतने जोर से समेट लिया कि उसे अपने शरीर में ही समेट लेगा। वह उसके होठों को खा जाना चाहता था......।

सहसा जीने के किवाड़ों की सांकल खनखना कर गिरने की आहट हुई और साथ ही किवाड़ खुल गये। दरवाजा खुलने से जीने की बत्ती का प्रकाश भीतर फैल गया। सास ने भीतर कदम रखा और आँखें तथा मुँह फैलाये, खोई सी सामने खड़ी रह गई।

जोर से चिल्लाने के लिये सास ने सीने में साँस भरा......।

केवल की बाहों में सिमटी लछमी प्रायः बेसुध हो गई थी। केवल ने उसे वैसे ही फर्श पर गिर जाने दिया और आत्म रक्षा के लिये वह सामने खड़ी, पुकारने के लिये तैयार सास पर टूट पड़ा। पुकारने के लिये खुले सास के मुँह से शब्द निकल पाने से पहले ही केवल ने सास के भरपूर शरीर को बाहों में ले, समीप पड़े पलँग पर गिरा कर ऊपर से दबा लिया......।

केवल ने सास का गला नहीं दबाया परन्तु अवस्था ऐसी थी कि सास चिल्ला न सकती थी। उसने दबे स्वर में विरोध किया—"हैं, हैं, क्या करते हो ?" परन्तु विरोध को स्वीकार करना केवल के लिये जीने मरने का प्रश्न था।

बहू सुध सम्भालते ही कमरे से खिसक गई थी। दस मिनिट बाद जब सास ने केवल की बाहों से मुक्ति पाई तो केवल की गाल पर ठुनका दे मुस्कराकर शिकायत की—"बड़े वैसे हो तुम !"

सास ने पूछा"—जीने में तो ताला था, आये किधर से ?"

केवल के बताने पर भय से सास के रोयें खड़े हो गये। उसके मुख से निकला—"हाय दैय्या !"

सास केवल को जीने की राह नीचे पहुँचा देने को तैयार थीं परन्तु केवल अपनी बरसाती के जीने में भीतर से सांकल लगा कर आया था। सास ने उसे अपनी धोती दी कि छज्जे के खम्भे में बाँध कर आहिस्ता से नीचे उतर जाय।

अब खत्रानी बहू को छज्जे पर देख कर झुंझलाती तो धीमे से और प्रायः स्वयं भी आ बैठती। कभी वह आते जाते केवल को

गली से पुकार लेती—"भैये, तुम्हारे दफ्तर में चीनी राशन का कागज मिलता होगा ? चीनी की बड़ी किल्लत है। तुम तो होटल में पा जाते होगे.......। घर-बार वालों की मुसीबत है।" कभी पुकार लेती—"भैये, दफ्तर से आ रहे हो ? एक गिलास चाय पी लो ! बड़ा जाड़ा पड़ रहा है " कभी केवल कोई चीज पहुँचाने स्वयं भी चला जाता और समय देखता कि सास न हो !

× × ×

१९४४-४५ में कलकत्ते पर जापानियों के बम पड़ने के खतरे से बड़ी-बड़ी कम्पनियों के दफ्तर यू० पी० में आ गये थे। बंगालियों ने आकर लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस आगरा में बित्ता बित्ता भर मकानियत घेर ली थी। किराये ड्योढ़े, दूने तभी हो गये थे और फिर बढ़ते ही गये। खत्राणी ने भी अपना घर बार ऊपर की मंजिल में समेट कर दूसरी मंजिल मुकर्जी बाबू को तीस रुपये माहवार पर उठा दी थी। सन ४५ के अन्त और ४६ के जनवरी में कलकत्ता के निर्भय हो जाने पर बंगाली लोग लौटने लगे। मुकर्जी बाबू भी लौट गये।

केवल को गली में रोककर खत्राणी ने कहा—"भैये, उस टीन के छप्पर के नीचे जाड़े में मर रहे हो ! चाहो तो मुकर्जी बाबू की जगह आ जाओ। आराम से रह तो पाओगे !"—केवल मुकर्जी की जगह चला गया।

गली में फिर से कोहराम मचा—"पण्डितानी ने अपने दरवाजे में खड़े होकर गरीबों के पेट पर लात मारने वालों को भैरव बाबा को सौंपा और खत्राणी ने टीन के पिंजरे में फँसा कर लोगों को लूटने वालों को गालियां दीं—"तू ने खसम बसा लिया था न, जा रहा है तो तुझे आग लग रही है। तेरा खरीदा हुआ गुलाम है क्या ?"

केवल ने गली के लोगों से कायदे की बात कही—"उतनी जगह में बाल बच्चों को कैसे लाता ? अब ढंग की जगह मिली है तो जाकर उन लोगों को लायेगा।

बंगाली लोग तो म्लेच्छ होते हैं, मांस मछली खाने वाले ! केवल अरोड़ा था। अरोड़ा और खत्री में क्या भेद ! ऊपर की दोनों मंजिलों में अधिक भेद न रहा। परन्तु सास बहू पर कड़ी निगाह

रखती थीं। कभी धमकाती कि मायके भेज दूँगी। फिर कहती कि इसके घर के लोग बड़े वैसे हैं, जो कुछ ले जायगी सब वहीं छोड़ आयेगी। केवल और बहू को कभी कभी ही एकान्त में मुस्कराने का अवसर मिलता और केवल के लिये यह—अरुचिकर परिश्रम सहने का पुरस्कार था!

बरसाती में रहते समय केवलचंद घर कुछ भी न भेज सका था। इस मास उसने घर से आये दुख भरे पत्र के जवाब में अपनी पूरी तनखाह भेज दी। होटलवाले को भी कुछ न दे पाया। आये मास किराया देने के बजाय खत्राणी से दो सौ और उधार लेकर कर्ज उतारे, घर भेजा और भला आदमी दिखाई देने के लिये एक गरम सूट सिला लिया।

केवल के दो मास मौज के कटे। खत्राणी प्रायः सुबह शाम उसे खाने के लिये भी बुला लेती—"भैये, बाजार का खाना क्या अच्छा लगता होगा? यहीं खा लो।" खत्राणी को भी फायदा था कि केवल के राशन कार्ड पर चीजें आधे दामों मिल जातीं। ऋण के लिये उसने केवल को परेशान नहीं किया। अलबत्ता कभी याद दिला देती—"भैये, अबकी तनखाह पर आधा उतार देना। हिसाब भाई-भाई और बाप-बेटे में भी ठीक होता है।"

संध्या समय केवल को असुविधा होती। वह लछमी से बात करना चाहता और सास अपने भारी भरकम शरीर की आड़ में लछमी को छिपा डांट देती—"तू जाकर लेटती क्यों नहीं! पराये मर्द के मुंह लगती है, मुंहजली।"

कुछ दिन बाद खत्राणी का स्नेह केवलको संकट मालूम होने लगा। उसे अनुभव होता था, वह निचुड़ गया है। परन्तु करता क्या? यह उसकी मर्दानगी को चुनौती थी। रात में नौ-दस बज जाने पर भी यदि खत्राणी सोने के लिये ऊपर न चली जाती तो वह घबराने लगता और बाहर छज्जे पर जाकर खड़ा हो जाता। अपनी पुरानी बरसाती की ओर देख कर सोचता—इससे तो वहीं अच्छा था।

इस पर जब केवल को लौटता न देख खत्राणी, मुंह में पान भरे धीमे से पुकार बैठती—"भैये, अब सोओगे नहीं?"

तो केवल सोचता छज्जों की उसी राह से बरसाती में उतर जाय जिस

राह एक बार जान पर खेल कर यहाँ चढ़ आया था।

जान का खेल आज जान का जंजाल हो गया था। लछमी भी अब उसे ऐसे लगने लगी थीजैसे सुन्दर चमकीला साँप हो! वह उससे भी कतराने लगा।

दफ्तर जाते और लौटते समय वह प्रतिदिन सोचता—यदि वह अपने बिस्तर और बक्स के लिये न लौटे तो क्या? बिस्तर और बक्स का मूल्य खज़ाञ्ची के कर्ज़ से अधिक न था।

परन्तु अब गली में उसकी स्थिति दूसरी थी। लोग उसे संदेह और विरोध की दृष्टि से नहीं, परिचय और विश्वास से देखते थे। सलीके से पहने उसके सूट के कारण दफ्तरों के बाबू लोग उससे अपनेपन और समानता का व्यवहार करते थे। यह सब छोड़ वह कर्ज़ के डर से भागने का कमीनापन करे? चोर की तरह गली गली छिपता, मारा मारा फिरे?……

उसका शरीर निर्बल और मन उदास होता जा रहा था। कमर में दरद रहता परन्तु वह गली में जम गई अपनी सफ़ेद पोशी की प्रतिष्ठा के बोझ को निबाहे जा रहा था……।

९

डरपोक कश्मीरी—

हफ़ज़ा आज, कल करके पन्द्रह दिन से अपनी मौत का दिन, —मौत का सामना करने का दिन टाल रहा था।

वह यह जानता था कि संकरी पहाड़ी पगडण्डियों पर दो दिन का सफ़र तय करके मौत उसे पकड़ने के लिये नहीं आयेगा। अभी तक कभी मौत इतना सफ़र तय करके किसी को पकड़ने नहीं आई। मौत क्या इतनी मोहताज और ग़रीब है कि बीहड़ पगडण्डियों पर हांफती हुई, अपनी एड़ियों की बिवाइयों से नोकीले पत्थरों पर लहू के दाग बनाती हुई, हफ़ज़ा जैसे आदमी को पकड़ने के लिये दो दिन का सफ़र तय करे? मौत के पास सिपाही थे, घोड़े थे, बन्दूकें थीं। इसलिये हफ़ज़ा जैसे सभी ग़रीब किसान लोगों को स्वयं यह सफ़र करके मौत के दरवाज़े तक जाना पड़ता। और फिर मौत से परे, मौत से बड़ी चीज़ है किस्मत या खुदा! उससे कोई कैसे बच सकता है? खुद जाकर मौत के सामने हाज़िर तो होना ही होगा! फिर 'खुदाय' का रहम है···कि मौत कितना बक्श दे!

अपने बाप की मृत्यु के बाद से, जबसे हफ़ज़ा अपनी ज़मीन का मालिक बना, अपने खेतों का सरकारी कर देने लगा, वह सदा स्वयं ही जाकर 'बोजीरा' के पटवारखाने में कर दे आता रहा।

हफ़ज़ा के खेत डुरसा गांव में थे। डुरसा गांव बोइला के इलाके में है और बोइला का इलाका बोजीरा के पटवारखाने में लगता है।

हफ़ज़ा ही क्या, बोइला के इलाके के सभी किसान इसी तरह अपना कर देने जाते थे। यह खेत या धरती किसान की क्या थी? यदि किसान सरकार का—महाराज का—कर बोजीरा के पटवारखाने

में जमा कराते रहे तभी तो धरती इनकी थी; नहीं तो धरती महाराज की थी।

इन खेतों को, धरती के इस टुकड़े को, महाराज ने कभी देखा न था। महाराज के पिता महाराज ने भी न देखा था। बोहला के बूढ़े से बूढ़े किसान की स्मृति इससे परे न जा सकती थी। उससे पहले कब, किस महाराज ने इस धरती और खेतों को देखा था यह न तो हफ़ज़ा और न बोहला के इलाके का कोई दूसरा ही आदमी जानता था।

बोजीरा के पटवारखाने में पटवारी ठाकुर गजरसिंह राज करते थे। उन्होंने हुरसा गांव देखा नहीं था। गजरसिंह से पहले उनके पिता इस इलाके के पटवारी थे। उन्होंने भी हुरसा गांव कभी न देखा था। परन्तु नक्शों में और पटवारखाने के कागजों में हुरसा गांव दर्ज था। हुरसा गांव के हिसाब में ऊंचे पहाड़ों की पसलियों पर बने हफ़ज़ा, वल्द मुरखी के खेत दर्ज थे। इन खेतों का क्षेत्रफल छः घुमा था। रब्बी और खरीफ का इन खेतों का लगान साढ़े छः रुपया दर्ज था। बोजीरा जाकर यह लगान पटवारखाने में जमा कराते रहने से हुरसा गांव के खेत महाराज की दया से हफ़ज़ा के थे।

और यदि किसान खुद बोजीरा जाकर लगान जमा न करें? यह प्रश्न उस इलाके में कभी किसी के मन में उठा नहीं! अगर ऐसा होता भी तो क्या इतनी बड़ी सरकार उठ कर हुरसा जाती? कभी किसी की जानकारी में ऐसा नहीं हुआ। ऐसी अवस्था में हफ़ज़ा या हफ़ज़ा जैसे किसान स्वयं पटवारखाने में जाकर दण्ड पाने के लिये हाज़िर होते। पटवारी साहब के हुक्म से हफ़ज़ा के खेत छिन जाते। दूसरा कोई किसान यदि नज़राना देता तो वे खेत उसके नाम दर्ज हो जाते, नहीं तो खिल्ले पड़े रहते। यदि दो किसानों में किसी बात पर झगड़ा होकर खून भी हो जाता तो खून करने वाला स्वयं ही बोजीरा जाकर अपने अपराध की सूचना दे पटवारी साहब की कैद में बैठ जाता।

बोजीरा के इलाके में बस्ती कम है। बस्ती कम है, तो इन्तज़ाम भी कम है। दीवानी और फौजदारी, न्याय और प्रबन्ध के महकमे अलग अलग न होकर सरकार का सब काम केवल एक ही सरकारी प्रतिनिधि पटवारी ही देखता और निभाता आया है। सरकार का काम वहां सरकार की शक्ति से अधिक सरकार की साख और लोगों

के विश्वास से ही चलता है। गढ़वाल और अलमोड़ा के इलाकों में भी ऐसे ही काम चलता है।

हफज़ा के खेतों से साल भर में मंडुल के मोटे अनाज की एक ही फसल होती थी। खेतों की फसल उसने कभी बेची नहीं। लगान के साढ़े छः रुपये वह अपनी भेड़ों की ऊन, हुरसा से नौ मील नीचे, सड़क किनारे साहूकार सिरीचन्द के यहां बेच कर थोज़ीरा में जमा करता था।

सन् पैंतालीस में हफ़ज़ा की भेड़ों के मुंह आ गया। चौदह में से बारह चल बसीं। सन् छियालीस में उसे खाने के लिए नमक नहीं मिला और उसके बाल बच्चों के मुंह आने लगा। हफ़ज़ा की घरवाली मुश्की ने घर में जमा साढ़े चार रुपये की पूंजी में से चोरी कर बच्चों के लिये आठ आने का नमक खरीद लिया। हफ़ज़ा ने मुश्की की नादानी से क्रोध में पागल हो घरवाली को पीटा, पर कर क्या सकता था।

सन् छियालीस में हफ़ज़ा थोज़ीरा लगान देने गया। वह पटवारी साहब के सामने बहुत गिड़गिड़ाया। पटवारी साहब ने दो रुपये नज़राना ले अगले बरस दोनों बरस का पूरा लगान जमा करा देने का हुकम दे उसे बख्श दिया था।

परन्तु अगले बरस मर चुकी भेड़ें जी नहीं उठीं। बच्चे तो नंगे थे ही। उनके शरीर पर फिरन (गलेसे एड़ी तक शरीर को ढके रहने वाला चोला) क्या, सिर की टोपी के लिये ही कपड़ा न था। उसका अपना शरीर भी फिरन से दिखाई देता था। जाड़ों में जब धरती, दीवारें, छतें बरफ से ढँक गईं, दोनों बच्चे, मुश्की और हफ़ज़ा कांगड़ी (अंगीठी) को घेर कर बैठे रहे। कांड़ी की आंच से झुलस कर उनके सीने और पेट की खाल वैसी ही सहनशील हो गई थी जैसी पांव की एड़ी की खाल होती है। परन्तु जब मुश्की की तीन बरस पुरानी फिरन भी टूट टूट कर गिर पड़ी। मुश्की के लिये घर से निकलना ही सम्भव न रहा तो बैसाख लगते ही हफज़ा को 'खुदाया' (खुदा की इच्छा से) बच गई दोनों भेड़ें और उनके चारों मेमने ले जाकर सिरीचन्द साह के हवाले कर, उसकी दूकान से नीला सूती कपड़ा लाकर मुश्की का शरीर ढँकने के लिये देना पड़ा।

दोनों भेड़ें और मेमने उसने बचा कर रखे थे की किसी तरह जमीन का लगान पटवारखाने में जमा करा देगा। परन्तु खुदाया, जो किस्मत में था। जैसे खुदाया भेड़ें मर गई वैसे खुदाया लगान देने का दिन टल न सका।

पन्द्रह दिन से हफ़जा बोजीरा की ओर जाने का दिन टाल रहा था। उसके पास थे केवल अढ़ाई रुपये। उसने पड़ोसी किसानों से और नौ मील दूर रहने वाले सिगीचन्द साह से कर्ज मांगने की सभी कोशिशें कर लीं। कोई उसे उधार देने वाला न था। पड़ोसी सादी के पास रुपये थे। उसके घर के दो जवान लड़के पंजाब में हर साल मजदूरी के लिए जाते थे। उसके पास रुपया था और वह पटवारखाने में नजराना जमाकर हफ़जा की धरती का पट्टा ले लेना चाहता था। दुष्ट सादी इसी दिन को जोह रहा था। हर साल जब हफ़जा सादी से बैल और हल उधार लेकर अपनी जमीन जोतता था, सादी मन भर अनाज लेकर भी शिकायत करता रह जाता कि उसे कुछ नहीं मिला, उसका हल घिस गया और उसके बैल मरे जा रहे हैं।

पन्द्रह दिन से आजकल करता हफ़जा मन ही मन रो रहा था कि धरती उसके हाथ से निकल जायगी। बाप दादा की धरती उसके हाथ से निकल जायगी। वह पहाड़ी ढलवान पर से उखड़ गये पत्थर की तरह लुढ़क जायगा? वह कहां जायगा? दोनों बच्चों और उनकी मां को लेकर कहां जायगा? पन्द्रह दिन सोच कर भी वह इस प्रश्न का कोई उत्तर पा नहीं सका। उत्तर नहीं पा सका, तब भी बोजीरा गये बिना तो चारा नहीं था। जो होना है, होगा। जैसे होता आया है, वैसे ही होगा!

मुरकी आंसू पोंछती झोंपड़ी के दरवाजे में खड़ी रही और हफ़जा फटी फिरन को रस्सी से समेटे, सिर लटकाये बोजीरा की ओर चल पड़ा। आस पास पहाड़ चांदी की टोपियां पहने, गहरे नीले आकाश के नीचे खड़े थे। पेड़ों में पत्ते और फूल थे। हफ़जा के पेट में भूख और हृदय में मौत का भय था। वह बोजीरा के पटवार खाने की ओर लड़खड़ाता, बढ़ता चला जा रहा था।

हफ़जा पटवार खाने पहुँचा और बहुत देर तक बड़े दुमंजिले

मकान के बरामदे के बाहर खड़ा कांपता रहा। इलाके और गांव के नाम से पहचाने जाने के बाद उसने इतने दिन तक बेईमानी से छिपे रहने के अपराध में गाली सुनी और इसके बाद जब वह केवल दो रुपये आठ आने निकाल पटवारी साहब के पांव पर रखने लगा तो स्वभावतः ही पटवारी साहब का क्रोध सीमा लांघ गया।

हफ़जा बहुत गिड़गिड़ाया। उसे विश्वास था—खुदाया, पटवारी साहब रहम करें तो सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु पटवारी साहब हफ़जा और हफ़जा जैसे आदमियों की ईमानदारी और गिड़गिड़ाहट तो सरकारी खज़ाने में जमा नहीं कर सकते थे।

पटवारी साहब ने हरकारे को हुक्म दिया कि हफ़जा की मुश्कें बांध कर आंगन में खड़े अखरोट के पेड़ के नीचे बैठा दिया जाय। हुसा गांव का दूसरा किसान जमान भी पिछले दिन से अपना लगान जमा कराने आया हुआ था। उसे हुक्म मिला कि हफ़जा की घरवाली को खबर दे कि अपना लगान चुकता कर, मर्द को छुड़ा ले जाये। उसके पास लगान न हो तो गांव को जो किसान चाहे पट-वारखाने में नजराना देकर हफ़जा के खेत मुन्तकिल करा ले।

रात पड़ गई। अखरोट के पेड़ के नीचे बैठे, मुश्कें बंधे हफ़जा ने सहारे के लिये सरक कर अपनी पीठ पेड़ के तने से सटा ली। उसने घुटने समेट शरीर को जाड़े से फिरन में छिपा लेने का यत्न किया। फिरन का नीचे का भाग टूट टूट कर गिर चुका था। उसके घुटने छिप न पाये। रात बिताने की यह तैयारी कर उसने कहा खुदाया और सिर तने से लगा कर आँखें मूंद लीं।

सूर्यास्त के समय ही सरसराती बर्फानी हवा चलने लगी थी। हफ़जा की फिरन इस हवा को रोक न सकती थी। हवा बार बार हफ़जा के शरीर को गुदगुदा कर दिल्लगी करती। हफ़जा को जान पड़ता जैसे किसी ने यख (बरफ़) के टुकड़े उसकी फिरन में छोड़ दिये हैं। हाथ बंधे होने के कारण वह फिरन को शरीर से अच्छी तरह चिपटा भी न सकता था। हफ़जा आँखें मूंदकर अपनी स्थिति को भूल जाना चाहता था। परन्तु हवा का स्पर्श उसकी आँखें खोल देता। बार बार उसे ख्याल आता—अगर फिरन के भीतर छोटी सी कांडी (अंगीठी) होती! अपनी सरदी भुलाने के लिये वह पटवार-

खाने की मुंदी खिड़कियों की झांकों से दिखाई देती रोशनी की ओर आँख लगाये रहा।

पटवारखाने में चार डोगरे संतरी रहते थे। एक संतरी पहरे की तैयारी के लिये पटवारखाने के बरामदे में खाट, खाट पर रजाई, खाट के नीचे एक कंडी रख, अपनी बन्दूक हाथ में ले, शरीर को फौजी ग्रानकोट से ढंक, भारी भारी फौजी बूटों से आँगन की कंकरीली धरती को रगड़ता, जम्हाई लेता हुआ पटवारखाने का चक्कर लगाने लगा।

पटवारखाने की खिड़कियों में रोशनी बुझ गई। हफ़ज़ा की आँखों में नींद न आई। अब वह बरामदे में डोगरे संतरी की खाट के समीप पड़ी कंडी में राख से ढंके, चमकते दो अंगारों को देख रहा था। कभी अखरोट के पेड़ के घने पत्तों की ओर आँखें उठा आकाश में चमकते तारों की ओर देखने लगता। तारे बर्छी की नोक की तरह ठंडे थे और अंगारे सुखद और गरम! वह दो अंगारे ही उसके हाथों में होते, उसकी फिरन के भीतर आ जाते, खुदाया ......।

संतरी कुछ देर आँगन की धरती को अपने लोहा लगे बूट से रगड़ कर थक गया। उसने अपनी बन्दूक खाट की पटिया से टिका दी और खटिया पर बैठ कंडी से आग ले चिलम के दम लगाने लगा। तमाखू की सुगन्ध उड़कर हफ़ज़ा की नाक तक पहुँची। उसकी जिह्वा पिघलने लगी और मुंह में पानी आ गया। हफ़ज़ा ने घूंट भर लिया। संतरी की ओर से आँखें हटाने के लिये पेड़ के तने से सिर टिका कर मन ही मन उसने कहा—खुदाया!

खाट पर बैठा संतरी चिलम पीकर औंघाने लगा। हवा अब भी तेज़ चल रही थी। अखरोट के पत्ते खड़खड़ा कर कह रहे थे—"सोजा, सोजा!" हफ़ज़ा की भी आँख लगने लगी।

सहसा समीप ही पच्छिम की पहाड़ी की ओर से आहट सुनाई दी जैसे बकरियों का बड़ा रेवड़ ढलवान पर से उतर रहा हो। हफ़ज़ा ने सुना परन्तु आँखें नहीं खोलीं—होगा, अपने को क्या?

तुरन्त ही आहट और बढ़ी और संतरी की ललकार सुनाई दी—"कौन है?"

हफ़जा ने आँखें खोल गर्दन घुमा कर उस ओर देखा, भीड़ की भीड़ चली आ रही थी। संतरी बराम्दे से निकल आया। भीड़ की ओर देख संतरी पटवारखाने के दूसरे संतरियों को पुकारने के लिये चिल्लाया—'पठान ! पठान !'-परन्तु ऊँचे स्वर में चिल्ला भी न पाया। वह बन्दूक भरने लगा। उसके बन्दूक भर पाने से पहले ही भीड़ की ओर से बन्दूकें चलने लगीं। संतरी गोली खा, चीख कर गिर पड़ा। हफ़जा भय से अपने सिर पर हवा में हिलते पत्तों की तरह कांप रहा था।

जोर जोर से अल्लाहो अकबर के नारे लगने लगे। भीड़ ने पटवारखाने को घेर लिया। हमलावरों ने मशाले जला लीं। भीड़ में कुछ पठान थे और कुछ खाकी वर्दी पहने सिपाही। पटवारखाने के भीतर से बच्चों, औरतों और मर्दों के चीखने, चिल्लाने की आवाजें आने लगीं। भीड़ 'अल्लाहो अकबर' के नारे लगा रही थी। बन्द किवाड़ों पर बन्दूकों के कुन्दों के धमाके हो रहे थे।

पटवारखाने के किवाड़ टूट गये। भीड़ कोठड़ियों में घुस पड़ी। इधर उधर से उठाया हुआ सामान बगल में दबाये और बन्दूकें संभाले पठान और सिपाही बदहोशी में इधर उधर झपट रहे थे। इसके बाद पटवारी साहब और पटवारखाने की स्त्रियों के हाथ पीठ पीछे बांध कर धरती में गड़े रुपये का पता पूछने के लिये आंगन में खड़े कर पीटा गया। अंधेरे में पेड़ के तने से चिपका हफ़ज़ा काँपता हुआ यह सब देख रहा था।

मर्दों और बूढ़ी औरतों को गोली मार देने के लिये मशालों की रोशनी में अखरोट के तने के पास लाकर खड़ा किया गया। हफ़जा इन लोगों की पीठ पीछे. ओट में छिपा काँप रहा था। मशालों की रोशनी में वह पेड़ के तने से सटा हुआ दिखाई दिया।

एक पठान ने गाली देकर कहा-"यह बदमाश यहाँ छिप रहा है।"

दूसरे पठान ने उसे औठें औठे ही समाप्त कर देने के लिये बन्दूक की नाली उसकी ओर सीधी की।

पहला पठान अपने साथी को रोक कर बोला "इसके तो पाँव भी बंधे हैं"—और हफ़जा से पूछा –"तू कौन…? काफिर…? मुसलमान ?"

भय से बेबस हफ़ज़ा के मुँह का नीचे लटका जबड़ा कांप रहा था। बड़ी कठिनता से हिचकी लेते हुये उसने उत्तर दिया—"मुस-लमान!"

"तेरी मुश्कें किसने बांधी ?......क्यों बांधी ?"—उससे पूछा गया।

हफ़ज़ा ने हकलाते हुये जवाब दिया कि उसकी मुश्कें पटवारी साहब ने बंधवाई थी, वह राजा का कैदी है।

भीड़ में से एक आदमी छुरा लेकर उसकी ओर बढ़ा। हफ़ज़ा की आंखें मुंद गईं।

पीठ पर लात पड़ने से जब वह पेड़ के तने से परे आ गिरा तो उसे मालूम हुआ कि उसके हाथों और पावों की रस्सियां कट चुकी थीं।

हफ़ज़ा को बांह से खींच कर खड़ा कर दिया गया और एक जलती हुई मशाल उसके हाथ में थमा दी गई।

हफ़ज़ा भय से कांपता हुआ, मन ही मन खुदाया, खुदाया कहता हुआ मशाल लिये खड़ा रहा। पटवारी साहब और दूसरे मर्दों को अखरोट के पेड़ के नीचे एक साथ खड़े कर गोली मार दी गई। हफ़ज़ा की आंखें बंद हो गईं। वह हवा से थर्राती बेत की डाल की तरह अपनी जगह खड़ा तौबा-तौबा कहता रहा।

भीड़ के पठान और सिपाही पटवार खान की कोठड़ियों में, कुछ बरान्दे में और कुछ अखरोट के पेड़ के नीचे बैठ गये। उनकी बंदूकें गोद में, या लेटे हुओं के सिरहाने, या हाथ की पहुँच के भीतर टिकी थीं।

पटवारी साहब की भैंस जिबह कर दी गई। मांस के बड़े बड़े टुकड़े भून जाने लगे और रोटियां सिकने लगीं। हफ़ज़ा बुझती हुई मशाल हाथ में लिये खड़ा रहा। जब मशाल बुझ गई तब भी हफ़ज़ा बुझी हुई मशाल थामे वैसे ही खड़ा रहा।

खा पीकर भीड़ के अधिकांश लोग सो गये। कुछ लोग आग के के पास बैठे जागते रहे। हफ़ज़ा अपनी फिरन में सिमटा बुझी हुई मशाल थामे पठानों से डरता खड़ा रहा।

सुबह कुछ और लोग आ गये। इनके साथ पांच लदे हुये खच्चर और दस हफ़ज़ा जैसे कश्मीरी किसान पीठ पर बोझ लादे हुये थे।

दिन निकलने पर अधिकांश पठान अपनी बंदूकें कंधों पर रख आस पास के गांवों की ओर चले गये। कुछ लोग बन्दूकें घुटनों से टिका बैठ कर चौकसी करने लगे। बोझ ढोने वाले कश्मीरी किसानों को आटा मांड़ कर रोटी सेंकने के काम में लगा दिया गया। हफ़ज़ा को व्यर्थ में बुझी मशाल लिये खड़े रहने के कारण गाली देकर पटवारखाने से आधा फर्लांग नीचे बहने नाले से पानी लाने का काम दिया गया। वह लोहे का गागर कंधे पर रखे, खुदाया खुदाया जपता पानी ढोने लगा। दोपहर बाद पठानों के खा पी लेने पर उसे भी रोटी मिली और उसने भर पेट खाया।

दिन रहते पठानों की एक टोली पटवार खाने से पूरब की ओर चल दी। दूसरी टोली अगले दिन खा पीकर सुबह चली। इस टोली के साथ दो खच्चर पटवार खाने से और मिला कर लदे हुये सात खच्चर और बारह कश्मीरी किसान कुली चले। इनमें हफ़ज़ा भी था। तीन पठान खच्चरों को और दो पठान कुलियों को हांकते चल रहे थे।

राह में जो झोपड़ियां और दुकानें मिलतीं, लूटी हुई और उजड़ी हुई मिलतीं। बड़ा गांव आने पर जला हुआ मिलता। आगे जाने वाली टोली पहले से बहुत से लोगों को गोली मार कर, लूट पाट कर साफ़ किये रहती। जवान औरतें और लड़कियां प्रायः एक पेड़ के नीचे इकट्ठी कर बैठाई हुई मिलतीं। उनके चेहरे आंसुओं से भीगे हुए और सहमे हुये दिखाई देते—बिलकुल मुरकी जैसे! हफ़ज़ा तौबा कह कर आंखें मूंद लेता और फिर मन ही मन कहता रहता, खुदाया।

तीसरे दिन बोझ ढोने वाली खच्चरों की संख्या बारह और कुलियों की संख्या तीस हो गई। पटवारखाने से दो और दूसरे तीन गांवों से समेटी हुई बारह औरतें भी साथ थीं। कुलियों पर बोझ इतना था कि तन से चला न जाता। हफ़ज़ा की पीठ पर बड़ा बोझ नहीं; कंधे पर छोटी मशीनगन थी लेकिन उसे सबसे आगे चलने वाली टोली के साथ, दौड़ भाग कर आगे आगे चलना होता था।

चौथे दिन पूरब की ओर से मुकाबिले में गोली चलने की आवाजें आने लगीं। मुकाबिला होने के तैयारी में भीड़ रुक गई। बीस पठान दस खच्चरों, पर बोझ उठाये कुलियों और औरतों को ले दूसरी राह चले गये। दो खच्चरें गोली बारूद ढोने के लिये और दो कुली मशीनगन उठाने के लिये लड़ने वाली भीड़ के साथ रख लिये गये। हफ़जा इन्हीं दो में से था।

अब लड़ाकू भीड़ राह छोड़ जंगल में घुस कर आगे बढ़ी। यह लोग पांच-पांच, दस-दस को टोलियों में छिप छिप कर आगे बढ़ रहे थे। पूरब से सुनाई देने वाली गोलियों की आवाजें जोर से सुनाई दे रही थीं। कभी-कभी इधर से भी दो चार गोलियां चल जातीं। एक बार हफ़जा के साथ पठानों और सिपाहियों की टोली एक टीले के पीछे छिप गई। हफ़जा के कंधे से मशीन उतार कर एक टीले की आड़ में रख कर सामने की पहाड़ी पर गोलियां चलाई गई। मशीन में से बंदूक की गोलियां ऐसे छूट रही थीं कि लगातार बादल गरज रहा हो। पल भर में सैकड़ों गोलियां। हफ़जा के कान बहरे हो गये। इसके बाद जब फिर मशीन हफ़जा के कंधे पर रखी गई तो भय से उसकी पिंडलियां कांप रही थीं। कदम उठाना उसके लिये दूभर हो रहा था परन्तु जल्दी कदम न उठने पर उस की पीठ पर बन्दूक का कुन्दा आ पड़ता। बन्दूक के कुन्दे और गाली पर ही बस न थी। किसी भी समय छुरा भी तो उसकी पीठ या बगल में घुस जा सकता था। हफ़जा के बाईं ओर चलता पठान उसकी पीठ पर छुरा चुभा कर यह बात साफ साफ समझा चुका था।

हफ़जा को बीचों बीच किये पठान और सिपाही चुपके चुपके दो टीलों के बीच से एक छोटे दरे में जा रहे थे। सहसा बीसियों गोलियां दायें बायें से आकर, बांयें दायें चट्टानों पर टकरा गईं और दो पठान सहसा गिर पड़े।

दोनों ओर की चट्टानों पर उगी झाड़ियों के पीछे से बहुत से सिपाही पठानों पर ऐसे आ गिरे जैसे मुर्गी के बच्चों के झुण्ड पर बाज आ गिरते हैं। हफ़जा गोली चलाने की मशीन पीठ पर लिये ही लुढ़क गया और मशीन के नीचे दब गया।

अब हफ़जा को दोनों ओर से बगलों के नीचे हाथ डाल खींच

कर खड़ा किया गया। उसकी पीठ पर से मशीनगन का बोझ हट चुका था। यह सिपाही दूसरी तरह के थे, दूसरी तरह की टोपियां पहने हुये।

हफ़ज़ा के हाथ फिर पीठ पीछे बाँध दिये गये। नये सिपाही पठानों, उनके साथी सिपाहियों और हफ़ज़ा को हांक कर ले चले। इतनी घटनायें, जिनकी कभी कल्पना भी हफ़ज़ा ने न की थी, लगा-के बाद होती जाने से हफ़ज़ा अपने खेतों के लगान की बात छोड़ यही सोचने लगा :—सिपाही लोग, बड़े लोग एक दूसरे से लड़ रहे हैं। वह तो ग़रीब है, किसी से नहीं लड़ता। फिर उसे क्यों मारा जा रहा है ?

कुछ दूर चलने के बाद सिपाही लोग कैदियों को लेकर सड़क पर पहुँचे। हफ़ज़ा हैरान था कि सिपाही लोग सब लोगों को लेकर पहिये लगे मकान में बैठ गये। मकान ज़ोर से गरज कर भागने लगा। हफ़ज़ा सोचता रहा—इसी को मोटर कहते हैं।

हफ़ज़ा को एक डेरे में ले जाया गया। सब ओर वर्दी पहने सिपाही थे। सब ओर बन्दूकें और संगीनें। उससे कश्मीरी बोली में प्रश्न पूछे गये। वह इतना कम जानता था कि सिपाहियों को सन्देह हुआ कि वह हमलावरों का साथी है भेद छिपा रहा है। हफ़ज़ा को दूसरे कैदियों के साथ संगीनों के पहरे में श्रीनगर भेज दिया गया।

श्रीनगर के कैदी कैम्प में फिर हफ़ज़ा की तहकीकात हुई। उसने फिर अपनी बात दोहराई—खुदाया लगान न दे सकने के कारण वह राजा का कैदी था। फिर खुदाया हमलावर पठानों का कैदी हो गया। अब फिर राजा का कैदी है, खुदाया।

नेशनल कान्फ्रेन्स के वालंटियर ने उसे समझाया—अगर वह अपने मुल्क पर हमला करने वाले दुश्मन से लड़ेगा तो उसे कैद से रिहा कर दिया जायगा।

हफ़ज़ा ने इनकार से सिर हिला दिया और बोला—"क्या लड़ेगा ? खुदाया, ग़रीब आदमी है। पठान के पास बन्दूक है।"

तू लड़ेगा तो तुझे भी बन्दूक दी जायगी—"वालंटियर ने आश्वासन दिया।"

हफ़ज़ा ने फिर सिर हिला कर इन्कार किया— 'नहीं मालिक, हम किसी से नहीं लड़ेगा, गरीब आदमी है। हमको बन्दूक से बहुत डर लगता है।

वालंटियर को क्रोध आ गया, वह हफ़ज़ा के सामने पांव पटक कर बोला—"तू क्यों नहीं लड़ेगा ? तू अपना मुल्क छीनने वाले दुश्मन से क्यों नहीं लड़ेगा ? तू कश्मीरी नहीं है ?"

हफ़ज़ा ने स्वीकार किया वह कश्मीरी है।

"तो फिर तू अपने कश्मीर के लिये, अपनी धरती के लिये क्यों नहीं लड़ेगा ?"—वालंटियर की आँखें सुर्ख हो गईं।

"खुदाया, कश्मीर राजा* का है, धरती राजा की है ?"—सहमते हुये हफ़ज़ा ने उत्तर दिया।

"राजा भाग गया ! अब कश्मीर राजा का नहीं। धरती राजा की नहीं। धरती तेरी अपनी है। तू अपनी धरती के लिये नहीं लड़ेगा ?" —वालंटियर ने फिर पूछा।

हफ़ज़ा की सिकुड़ी हुई गर्दन तन गई और बुझी हुई आंखें चमक उठीं—"लड़ेगा हजूर ! जरूर लड़ेगा !"—वह बोल उठा।

वालंटियर ने करुणा से उसकी ओर देखा और निराश स्वर में कहा—"तू क्या लड़ेगा ?... तू तो बन्दूक से डरता है।"

हफ़ज़ा उत्साह में उठ कर खड़ा हो गया और हाथ उठा ऊँचे स्वर में उसने विरोध किया—"नहीं डरेगा हजूर। बन्दूक भी करेगा। लड़ेगा। लकड़ी से लड़ेगा। पत्थर से लड़ेगा।"

वालंटियर सहम कर रह गया। कश्मीरी किसान की कायरता की लांछना का कारण क्या है ?—उसने सहसा समझा—कश्मीरी डरपोक कह कर क्यों बदनाम है ?...वह लड़ता किसके लिये ? उसके पास लड़ने के लिये था क्या......?

---

* हमलावर पठानों के कश्मीर राज्य में दूर तक घुँस आने पर कश्मीर का राजा राजधानी श्रीनगर छोड़ कर जम्मू चला गया था। उस समय नेशनल कान्फ्रेंस के नेतृत्व में कश्मीर की प्रजा हमलावरों से लड़ रही थी।

धर्म रक्षा—

प्रोफेसर ब्रह्मदत्त ने जिन दिनों एम० एस० सी० पास किया था, ऐसी सफलता प्राप्त करने वालों की संख्या बहुत कम थी। यदि वे चाहते—सरकारी कॉलिज में प्रोफेसरी या कोई दूसरी ऊंची नौकरी मिल सकती थी। परन्तु वह बात उन्होंने सोची भी नहीं।

वेदज्ञान के प्रचार द्वारा विश्व के कल्याण का व्रत ले वे 'वेद प्रचार सभा' के आजीवन सदस्य बन गये। पचहत्तर रुपये मासिक की जीविका पर उन्होंने जीवन भर के लिये देश के वेदज्ञान और शिक्षा प्रचार का कठिन व्रत ले लिया।

प्रो० ब्रह्मव्रत ने पश्चिमी रसायन विज्ञान का अध्ययन तो किया था परन्तु इस शिक्षा के भ्रम पैदा करने वाले प्रभाव से वे बचे रहे। उनका अखण्ड विश्वास था कि सब सत्य विद्या से जाने जाते हैं, उनका आदि मूल ईश्वर है और ईश्वर का एक मात्र पूर्ण ज्ञान वेद है। पश्चिमी भौतिक ज्ञान के आधार पर उन्नति की आशा उन्हें एक भ्रमपूर्ण अहंकार मात्र जान पड़ता था, ऐसे ही जैसे कोई चूहा सोंठ की एक गांठ चुराकर समझे कि उसने पंसारी की दूकान पा ली है।

वे प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन की बात प्रायः दोहराया करते थे—समुद्रों में बहकर आई एक चमकदार कौड़ी किनारे से उठा कर हम फूले नहीं समाते। हम नहीं जानते ईश्वर की अनादि और अनन्त शक्तियों के सागर में ऐसे कितने अनमोल रत्न भरे पड़े हैं। इन अनमोल रत्नों को हम उसकी कृपा और ज्ञान के बिना नहीं पा सकते। प्रो० ब्रह्मव्रत पश्चिमी विज्ञान का खोखलापन और उसकी तुलना में

वैदिक ज्ञान की तर्कसंगति, कार्य-कारण परम्परा और नित्यता प्रमाणित करते थे। देश की विदेशी गुलामी और दरिद्रता तथा दैन्य भी उनके विश्वास में भारत के वेदज्ञान से विमुख हो जाने का ही परिणाम था। अन्यथा जिस समय यह देश ब्रह्मचर्य के बल से वेदज्ञान का स्वामी था—

"एतद्देश प्रसूतस्य सकाशाद् अग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्व मानवः॥"

(इस देश में उत्पन्न होने वाले संसार के ज्येष्ठ शिक्षक हैं। संसार के मनुष्य इस देश में जन्मे लोगों से अपने धर्म और चरित्र की शिक्षा पाते हैं।

प्रो० ब्रह्मव्रत प्रायः ही प्राचीन भारत में ब्रह्मचर्य के बल से प्राप्त होने वाले ज्ञान के प्रमाण में इस श्लोक का उद्धरण अपने व्याख्यानों में दिया करते थे।)

× × ×

प्रो० ब्रह्मव्रत के जन्म समय की राशि के विचार से बालक का नाम सुझाने वाला पुरोहित कुछ शृंगारी स्वभाव का रहा होगा। बालक का पहला नाम रखा गया था—"राधारमण"

लाहौर के एंग्लो वैदिक कालिज में पढ़ते समय राधारमण ने अब्रह्मचर्य से विनाश और ब्रह्मचर्य से शक्ति के मार्ग को पहचाना। जीवन से विलासिता और अब्रह्मचर्य के सब चिन्ह दूर कर देने के साथ साथ उन्होंने माता राधा से विलास का सकेत करने वाले अश्लील नाम को भी त्याग दिया और ब्रह्मव्रत नाम ग्रहण कर लिया। उन्होंने बोर्डिंग हाउस में अपने कमरे की दीवार पर मोटे अक्षरों में लिख दिया :—

"ओ३म्"

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत:"

'ब्रह्मचर्य ही जीवन है।"

दूसरे विद्यार्थियों की तरह ब्रह्मव्रत के सिर पर तेल और कंघी से संवारी जुल्फें न रहतीं। मशीन से बराबर छंटे बालों में मजबूत गांठ

से खड़ी शिक्षा ही दिखाई देती। बन्द गले का कोट, न तंग न खुला पहुँचे का पाजामा और देसी जूता। एम० एस० सी० तक इस वेश में परिवर्त्तन न आया और उसके बाद प्रोफेसर बन जाने पर भी नहीं। नवयुवकों की विलासिता के खर्च से परेशान माता-पिता प्रो० ब्रह्मव्रत की सादगी की प्रशंसा उदाहरण रूप से अनुकरणीय बता कर करते थे।

ब्रह्मचर्य का महत्व न समझने वाले, कुसंस्कारों में फंसे ब्रह्मदत्त के माता पिता ने जहां और भूलें की थीं वहां एंट्रेंस में पढ़ते समय ही लड़के का विवाह भी कर दिया था। ब्रह्मचर्य का महत्व समझने पर ब्रह्मव्रत ने निश्चय किया कि कालिज की छुट्टियों के समय जब वे अपने देहाती कसबे के घर जायं, उनकी नवयुवति पत्नि अपने नैहर चली जाया करे।

पति के इस सद्‌विचार का अर्थ और महत्व न समझ पाने पर भी मूक नव वधू कुछ कह न सकी। परन्तु स्वयं ब्रह्मव्रत के माता पिता और वधू के माता पिता को शहर की हवा से बिगड़ते लड़के का यह अत्याचार सहन न हुआ। पड़ोस और बिरादरी के लोग भी इसके अनेक अर्थ लगाने लगे—लड़के को बहू पसन्द नहीं है। शहर में वह दूसरा ब्याह करेगा आदि आदि।

ब्रह्मव्रत को कुसंस्कारों का समर्थन लिये जनमत के सम्मुख झुक जाना पड़ा। फिर जैसा कि शास्त्र में लिखा है, इसका परिणाम भी हुआ। ब्रह्मव्रत अभी बी० एस० सी० में ही थे और कालिज की पत्रिका में 'ब्रह्मचर्य रक्षा' पर निबन्ध लिख रहे थे, घर से आये पत्र में उन्हें एक सुन्दर कन्या के पिता बन जाने का समाचार मिला।

सन्तान के जन्म की खबर से ब्रह्मव्रत को अपना व्रत खण्डित हो जाने के प्रमाण के प्रति क्षोभ और ग्लानि ही अधिक हुई। इस अपराध का प्रायश्चित्त करने के लिये उन्होंने बारह वर्ष तक पत्नि से सहवास न करने का निश्चय कर लिया:—ईश्वर ने अपना संदेश संसार में फैलाने के लिये उन्हें जो शक्ति दी है उसका नाश वे नहीं करेंगे।

× × ×

लाहौर पंजाब में पश्चिमी शिक्षा का केन्द्र रहा है। प्रो० ब्रह्मव्रत का विश्वास था कि उस नगर के विलास और व्यसन के वातावरण में ब्रह्मचर्य के आदर्श का पालन सम्भव नहीं। उन्होंने व्यास नदी के तट पर बसे एक छोटे नगर के "एंगलो वैदिक हाईस्कूल" की अध्यक्षता स्वीकार कर ली। उन्हें विश्वास था कि गांव के अपेक्षाकृत सादा और स्वस्थ वातावरण में पले लड़कों को वे उचित वैदिक शिक्षा देकर ऋषियों द्वारा दिये वैदिक ज्ञान का प्रचार विश्व में कर सकेंगे। आर्यों के पवित्र उद्देश्य "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" (सकल विश्व को आर्य बनाओ) की पूर्ति जुल्फों में सुगन्धित तेल लगा लगाकर और सिगरेट पी-पी कर पीले पड़ जाने वाले, प्रकृति से विमुख शहर के नवयुवकों से नहीं हो सकती। इस उद्देश्य के लिये प्रकृति माता की गोद से शक्ति पाने वाले, स्वस्थ, अब्रह्मचर्य तथा व्यसनों के घातक प्रभाव से बचे हुये ग्रामीण युवक ही सफल हो सकते हैं।

प्रो० ब्रह्मव्रत ने नगर से दो मील दूर, नदी किनारे बने एंगलो वैदिक स्कूल के समीप एक "ब्रह्मचारी बोर्डिंग" की स्थापना की। इस बोर्डिंग में किसी भी विवाहित लड़के को रहने की आज्ञा नहीं थी। बोर्डिंग के छात्रों को शहर और बाजार जाने की आज्ञा नहीं थी। बोर्डिंग के चारों ओर ऊंची दीवार खिचवा कर उस पर कांच के टुकड़े जड़वा दिये गये थे। लड़कों के वस्त्र उपयोग की वस्तुयें तथा भोजन सब ब्रह्मचर्य के नियमों के अनुसार होता था। ब्रह्मव्रत स्वयं कड़ी आंख रख किसी भी व्यसनी प्रभाव को वहां पनपने न देते। वे प्रति सध्या छात्रों को उपदेश देते :—

"ईश्वर ने यह सुन्दर शरीर और स्वास्थ्य हमें अपने आदेशों और नियमों का पालन करने के लिये दिये हैं। ब्रह्मचर्य से शरीर की शक्ति और बुद्धि बढ़ती है। अब्रह्मचर्य से शरीर और बुद्धि का नाश होता है।" वे ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर शौच, स्नान, व्यायाम आदि का उपदेश देते। वे समझाते कि ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये व्यायाम और शीतल जल से स्नान आवश्यक है। कोई कुविचार मन में आते ही गायत्री मंत्र का पाठ करना चाहिये। सिगरेट, खटाई, मिर्च, अधिक मीठा ब्रह्मचर्य के लिये हानिकारक हैं। अश्लील गजलें और चित्र ब्रह्मचर्य के लिये हानिकारक हैं। ऐसे अपराध होने पर

वे छात्रों को बेंत से पीट कर दण्ड देते और उपदेश देते कि ऐसा करना ब्रह्मचर्य का नाश है और ब्रह्मचर्य का नाश आत्महत्या है।

ब्रह्मचर्य की महिमा और अब्रह्मचर्य की निन्दा सुनते-सुनते विद्यार्थियों में प्रायः कौतुहल जाग उठता है कि अब्रह्मचर्य से क्या होता है; अब्रह्मचर्य क्या है? उन्हें मिर्च खाने, ठंडे-जल से नहाने की इच्छा होती और इस प्रकार ब्रह्मचर्य तोड़ने के साहस से संतोष होता। अधिक जानने वाले दूसरे लड़कों को अभिमान से बैठाते, असली अब्रह्मचर्य लड़कियों से और लड़कों के आपस में स्त्री पुरुषों के सम्बंध की बुरी बातें करने में होता है।

पहले से कुसंस्कार पाये हुये लड़कों ने बोर्डिंग में दो बार ऐसा कुचरित्र किया। प्रो० महाशय ने उन्हें बेंत मारकर बोर्डिंग से निकाल दिया। छात्र कई दिन तक इन अपराधों के विषय में कल्पना और जिज्ञासा करते रहे।

प्रो० महाशय समाज और विश्व के कल्याण के लिये अज्ञान, कुसंस्कारों और व्यसनों से लड़ रहे थे। वे स्वयं कठिन संयम से ब्रह्मचर्य का पालन करते, अपने छात्रों से कराते और संसार के कल्याण के लिये भी उपदेश देते:—"जो सात्विक आनन्द और शान्ति संयम और ब्रह्मचर्य द्वारा शक्ति उपार्जन कर भगवान के कार्य को पूरा करने में है, वह व्यसनों द्वारा भगवान के दिये शरीर को नष्ट करने में कहां मिल सकती है। व्यसनों का आनंद मिर्च के स्वाद की भांति है प्रकृति हमें उससे दूर रहने का उपदेश देती है। हमें मिर्च से कष्ट होता है परन्तु हम आत्मनाश का हठ कर उसका अभ्यास कर लेते हैं। इसी प्रकार कोई भी कुकर्म करते समय भगवान हमारे मन में लज्जा और संकोच उत्पन्न करते हैं। यह हमें भगवान की चेतावनी है। हमें ईश्वर की चेतावनी को समझना चाहिये। आनन्द, शक्ति और शान्ति ईश्वर की आज्ञा पालन में है।

प्रो० महाशय के उपदेश और कर्म दोनों की ही समाज में बहुत प्रतिष्ठा थी।

× × ×

प्रो० महाशय बारह वर्ष के ब्रह्मचर्य व्रत पर दृढ़ थे। परन्तु छठे

वर्ष पाँचवें वर्ष में पांव रखती अपनी पुत्री की शिक्षा की आवश्यकता से वे चिन्तित हुये। । पुत्री का नाम उन्होंने रखा था—ज्ञानवती। पुत्री और उसकी माता को अपने साथ रखने में छः वर्ष के शेष ब्रह्मचर्य के लिये आशंका थी।

उस समय ज्ञानमय ईश्वर ने अपने अनन्त और अज्ञेय विधान से सहायता की। ज्ञानवती की माता के लिये इस पृथ्वी पर निर्दिष्ट कार्य और समय समाप्त हो गया। वह प्रो० महाशय के महान उद्देश्य के मार्ग को निर्बाध कर परम पिता परमात्मा की गोद में लौट गई।

प्रो० महाशय ज्ञानवती को दादा-दादी के कुसंस्कार पूर्ण लाड़ के वातावरण से ले आये। मां और दादी ने लड़की की छोटी छोटी कलाइयों को सोने के कंगनों में बांध दिया था। उसके छोटे-छोटे हाथों में मेंहदी रची हुई थी और केश गूंथे हुये थे।

प्रो० महाशय ने कुछ दुलार से फुसला कर और कुछ अनुशासन से यह सब दूर कर दिया उसके केश लड़कों की तरह कटवा दिये, नमस्ते करना सिखाया और गायत्री मन्त्र कंठ करा दिया और ईश्वर भक्ति के कुछ गाने भी। वह उसे 'बेटा ज्ञान' कह कर पुकारते। अतिथियों के सामने वह गायत्री मन्त्र सुनाती। "तुम क्या बनोगी?" प्रश्न का उत्तर देती—"ब्रह्मचारिणी।" भोजन के पश्चात् या और किसी समय डकार या हिचकी आ जाने पर बच्ची के मुख से निकल जाता—"ओ३म् तत्सत्।"

स्त्री के अभाव में बालिका के लिये घर पर समुचित प्रबंध में असुविधा देख और ऋषि वचन के पालन के लिये प्रो० महाशय ने ज्ञान को कन्या गुरुकुल में दाखिल करा दिया। बारह वर्ष के लिए ज्ञानवती के जीवन की सुव्यवस्था हो गई। गुरुकुल में शिक्षा का अवकाश होने पर भी प्रो० महाशय पुत्री को कुसंस्कारों से बचाने के लिये बाहर न लाते।

ज्ञानवती गुरुकुल में बारह वर्ष की शिक्षा पूर्ण कर चुकी थी। उसने संस्कृत और वैदिक साहित्य का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया था। वह 'महाभाष्य' और 'निरुक्त' की व्याख्या कर सकती थी। शरीर उसका गुरुकुल के कठिन जीवन से दुबला और रूखा जान पड़ता था।

परन्तु वह स्वस्थ थी, उपेक्षा से यौवन का भार उठाये वैरागन सी दिखाई पड़ती, अपने आपको और संसार को पहचानने के यत्न में चकाचौंध सी।

ज्ञानवती को गुरुकुल से लौटे अभी दो मास ही बीते थे। बोर्डिंग से अलग उसके पिता के लिये बनाये गये मकान में तीन खाली-खाली से कमरे थे जिनमें एक पुस्तकों की आलमारी और स्कूल के प्रबन्ध के कागज भरे थे। एक कमरे में पिता के सोने के लिये लकड़ी का तख्त था। ज्ञानवती के आने पर जल्दी में तख्त तैयार न हो सकने के कारण दूसरे कमरे में एक चारपाई डाल दी गई थी। प्रो० महाशय का नौकर मोतीराम रसोई में या बरामदे में ही सो रहता। मोतीराम लड़कपन से प्रो० महाशय के यहां रहने के कारण हिन्दी पढ़ गया था। वह रामायण महाभारत और दूसरी पुस्तकें पढ़ चुका था। इसके अतिरिक्त थी एक गाय, कमला। कमला का शुद्ध दूध पर्याप्त मात्रा में होने पर मालिक और नौकर दोनों पीते और कम रह जाने पर केवल प्रो० महाशय।

जिस समय ज्ञानवती कमला के दूध में भाग लेने के लिये आकर परिवार में सम्मिलित हुई, कमला प्रायः वर्ष भर दूध दे चुकी थी और उसका पुत्र 'केतु' अनावश्यक होने और अधिक उपद्रव करने के कारण कहीं दूर भेज दिया जा चुका था। कमला दूध कम ही दे रही थी। प्रो० महाशय ने ज्ञानवती के तप से दुर्बल शरीर का ध्यान कर नौकर मोतीराम को बाहर से एक सेर दूध रोजाना और लाने की आज्ञा दे दी थी।

ज्ञानवती को दूध पीने से अधिक सन्तोष होता था कमला की सेवा से। कमला इस घर में सदा दो पुरुषों को ही देखती आई थी। घर में आई युवती नारी को अपना सवर्गीय जान, ज्ञानवती को देख वह पुलकित और स्फुरित हो जाती। अपनी बड़ी बड़ी रसीली आंखें ज्ञानवती की ओर उठा स्नेह से कोमल रम्भाहट से पुकार लेती। ज्ञानवती को कमला के चिकने रोमपूर्ण शरीर पर हाथ फेरने में, उसके गले के कम्बल को हाथों से सहलाने में सुख मिलता। वह अपनी दोनों बांहें गैया के गले में डाल देती। सजीव त्वचा का ऐसा स्पर्श उसने कभी अनुभव न किया था। वह मोतीराम से गैया दोहना

सीखती। मोतीराम यद्यपि केवल नौकर था परन्तु युवा पुरुष था। लड़कियों से भिन्न, जिनके साथ ज्ञानवती सदा रहती आई थी।

ब्रह्मचर्याश्रम का समय पूरा कर चुकने के कारण ज्ञानवती को खटाई और मिर्च खाने का अधिकार था। इन पदार्थों के स्वाद की ओर उसकी रुचि थी। प्रो० महाशय का भोजन ऐसे उत्तेजक पदार्थों से सदा शून्य रहता। मोतीराम अलग से इसका सेवन करता था। ज्ञानवती की रुचि इस ओर देख उसने कृपणता नहीं की। ज्ञानवती को संतुष्ट करने में उसे स्वयं आनन्द मिलता था।

हिन्दी पढ़ना और कुछ लिखना भी सीख लेने पर मोतीराम आर्य समाज मन्दिर में रहने वाले पण्डित जी अथवा स्कूल के मास्टरों के घर से कुछ पुस्तकें अपना समय काटने और पढ़ने का आनन्द पाने के लिये मांग लाता था। इनमें 'स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र' 'हनुमान जी का जीवन चरित्र' के अतिरिक्त 'चन्द्रकान्ता सन्तति' अथवा दूसरे सामाजिक और जासूसी उपन्यास भी रहते थे। घर में अकेली ज्ञानवती के लिये समय बिताने के लिये इन पुस्तकों को पढ़ने के अतिरिक्त दूसरा उपाय न था। इन पुस्तकों से ज्ञानवती को ऐसा ही संतोष होता जैसा निरन्तर पथ्य सेवन के बाद चिकित्सक द्वारा निषिद्ध स्वादु भोजन से होता है।

जिस समय छः वर्ष की ज्ञान को प्रो० महाशय ने शिक्षा के लिये गुरुकुल भेज दिया था वह नमस्ते और गायत्री मन्त्र बोलने वाला खिलौना मात्र थी। गुरुकुल से अठारह वर्ष आयु पूर्ण कर लौटी ज्ञानवती उनकी पुत्री होने पर भी नव युवती थी। बिलकुल वैसी ही युवती जैसी अठारह वर्ष पूर्व, प्रो० कालिज में पढ़ते समय घर जाने पर ज्ञानवती की मां युवती थी। जिसके सम्मुख पराजय से उन्हें बारह वर्ष ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण करना पड़ा था।

ज्ञानवती को देख प्रो० महाशय के मन में ज्ञान की मां की स्मृति ताजी हो जाती। रूप रंग में प्रायः ऐसी ही थी, व्यवहार में बहुत भिन्न। वह संकोच शील, भीरु ग्रामवधु थी; यह शिक्षा के अधिकार से उग्र और सतेज। प्रो० ज्ञानवती से संकोच अनुभव करते। उसकी ओर से दृष्टि बचाये रहते।

प्रो० महाशय के ब्रह्मचर्य व्रत का मार्ग था - यथा सम्भव स्त्रियों के सम्पर्क में न आना और अवसर पड़ने पर उन्हें माता अथवा बहिन कह कर सम्बोधन करना. स्वयं उनकी आयु अभी अट्टीस वर्ष की ही थी परन्तु ज्ञानवती को वे माता या बहिन न पुकार सकते थे और बेटी कहने से अनुभव होता कि वे सहसा बूढ़े होने का दम्भ कर रहे हैं। नियमित जीवन के फलस्वरूप उनके सिर के केश अभी काले ही थे।

पूर्ण युवती पुत्री के गुरुकुल से आते ही आर्य मित्रों ने उसके विवाह का चर्चा किया। प्रो० महाशय स्वयं इसी चिन्ता में थे कि पुत्री के लिये योग्य वर कहाँ और कौन होगा? उन्होंने गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त स्नातकों के विषय में सोचा और कुछ योग्य अध्यापकों के विषय में भी। परन्तु वासना और गृहस्थ के वातावरण से अछूती युवा पुत्री से उसके विवाह के विषय में बात करने का उन्हें साहस न हुआ।

ज्ञानवती के ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये वेदज्ञान के प्रचार का कार्य करते रहने की बात भी उन्होंने सोची। ऐसे समय यह भी विचार आया कि ज्ञानवती के स्थान पर यदि पुत्र सन्तान होती तो उनके जीवन की समस्या कितनी सरल होती।

यह निर्बलता मन में आने पर प्रो० महाशय ने अपने आपको निर्विकार, सदासत्य और पूर्ण ब्रह्म के न्याय और विधान पर सन्देह करने के लिये धिक्कारा। परमेश्वर ने नर और नारी को समान रूप से अपने ज्ञान का प्रकाश करने के लिये रचा है। नर और नारी दोनों में ब्रह्म के ज्ञान की पूर्णता है।

बार बार नारी का ध्यान आने से प्रो० महाशय को स्वयं अपने ऊपर क्रोध आता। उन्होंने अपने मन को तर्क से समझाया :—प्रलोभन को जीतना ही पुरुषार्थ है। स्त्री की वासना सबसे बड़ा प्रलोभन है। यह ज्ञान का सबसे बड़ा शत्रु है। वासना के आकर्षण के प्रति उपेक्षा भय का कारण है।

युवती के घर में अकेली रहते समय उन्होंने बहुत दिन से भुलाई अपनी एक वृद्धा बुआ को घर में बुला कर रखने की बात सोची। अपने घर पर युवा विद्यार्थियों और अध्यापकों का अधिक आना

ज्ञाना न होने देने के लिये वे अधिकांश समय स्वयं भी स्कूल के दफ्तर में ही रहते।

× × ×

रविवार के दिन मध्यान्ह के समय लाहौर में 'वेद प्रचार सभा' की बैठक थी। प्रो० महाशय को वहाँ जाना पड़ा।

दोपहर का समय था। मोतीराम सौदा लेने बाजार गया था। ज्ञानवती अपनी चारपाई पर लेटी कोई पुस्तक पढ़ रही थी। मकान के पिछवाड़े से गैया कमला के ओर से रम्भाने का स्वर सुनाई दिया। ज्ञानवती का मन पुस्तक में रमा था। गैया की रम्भाहट बार बार सुन ज्ञानवती को गैया पर दया और मोतीराम पर क्रोध आया:—"बहुत दुष्ट है, इसने गैया को भूसा नहीं दिया।"

ज्ञानवती पुस्तक छोड़ उठी और एक टोकरी भूसा ले उसने गैया की नांद में छोड़ दिया। कमला ने भूसे की ओर देखा भी नहीं। वह और भी व्याकुलता से रम्भा उठी।

ज्ञानवती चिन्ता से कमला की ओर देख रही थी। उसने सोचा और एक बाल्टी जल लाकर गैया के सामने रख दिया। वह कमला को पुचकारने लगी।

कमला ने जल की ओर देखा और जोर से सिर हिला कर रम्भा उठी। गैया व्याकुलता में खूंटे का चक्कर लगा रही थी और रस्सी तुड़ा देना चाहती थी। ज्ञानवती उसकी व्यथा से व्यथित हो उसे पुचकार रही थी और पूछ रही थी—"कमला क्या है, क्या हुआ?... क्या चाहती है?"

मोतीराम लौट आया। ज्ञानवती ने दुःखी स्वर में उसे कमला की अवस्था सुनाई। गैया अब भी व्याकुलता से रस्सी तुड़ा रही थी। मोतीराम ने गैया को देखा और बेपरवाही से बोला—"गैया बाहर जायगी, बीबी जी रुपये दो!"

"कहाँ" ज्ञानवती ने चिन्ता से पूछा—"पशु-अस्पताल?"

"सांड के पास जायगी"—मोतीराम ज्ञानवती के अज्ञान पर हंस दिया।

"हाय क्यों?"—ज्ञानवती ने आग्रह किय

"सांड के पास जाती है न गैया।"

"क्या बात है।"—ज्ञानवती ने फिर आग्रह किया। यह समस्या गुरुकुल में कभी उसके सामने न आई थी। पुस्तक में इस विषय में कुछ पढ़ा नहीं था।

"आप रुपये दीजिये।"

प्रो० महाशय मोतीराम से पैसे पैसे का हिसाब पूछते थे। ज्ञानवती ने भी पूछा रुपये का क्या होगा।

"सांडवाला लेता है।"

"किस लिये?"

"गैया नई होगी, ठीक हो जायगी।"

"कैसे?"—फिर ज्ञानवती ने आग्रह किया।

"लौट कर बताऊँगा।"

ज्ञानवती ने पिता की आलमारी से निकाल पांच रुपये का नोट दे दिया। मोतीराम गैया को रस्सी से थाम ले गया। ज्ञान चिन्ता से कभी कमरों का चक्कर काटती, कभी चारपाई पर लेट जाती। गैया की चिन्ता से उसका मन दुखी था।

सूर्य डूबने के समय गैया को लौटा लाया। कमला बिलकुल शांत थी। उसे देखते ही ज्ञानवती ने पूछा—"क्या बात थी बताओ!"

मोतीराम मुस्कराया—"तुम नहीं जानतीं, गैया सांड के पास जाती है।"

"हाय"—चिन्तासे आंखे फैला और सांस खींच कर ज्ञानवती ने पूछा—"सांड ने बेचारी कमला को मारा तो नहीं?" क्या हुआ बताओ सच सच?

मोतीराम रसोई की ओर जाना चाहता था परन्तु ज्ञानवती हठ कर रही थी। इस हठ से मोतीराम उत्तेजित हो उठा। उसकी आंखे गुलाबी होकर जबान लड़खड़ाने लगी। वह बोला—"अरे जैसे मर्द औरत करते हैं।"

ज्ञानवती को कौतूहल की सीमा पर थी—"कैसे?"—एक बार फिर उसने पूछा।

मोतीराम अश्लीलता पर आ गया। ज्ञानवती सहमी तो सहसा रोमों से पसीना छूट गया। उसने आँचल दाँतों में दबा कर बल-खाया—"हट गैया तो बड़ी पवित्र होती है। यह तो बड़ी बुरी बात है।"

मोतीराम यों दिखाई गई उत्तेजना से अपने बस में न था। उसने ज्ञानवती को कोहनी से थाम कर कहा--"आओ तुम्हें बतायें।"

ज्ञानवती ने यों पकड़े जाने का विरोध किया परन्तु नाराज न हो सकी। वह विरोध ऐसा था कि मोतीराम को अपनी शक्ति का उन्माद अधिक अनुभव होने लगा। ज्ञानवती ने मोतीराम के समीप हो लड़-खड़ाते शब्दों में कहा—"नहीं यह तो बुरा काम है।"

मोतीराम ने तर्क किया—"एक बार देखो तो! बुरा क्या है? यह तो श्री रामचन्द्र जी, सीता जी और श्री कृष्ण जी भी करते थे।"

ज्ञानवती ने पिता का भय याद दिलाया। मोतीराम ने उत्तर दिया—"वो तो लाहौर गये हैं। कल आयेंगे।" ज्ञानवती ने देखा मोतीराम नहीं मानेगा और वह मना भी तो नहीं कर पा रही थी। पाप के भय को मन ने उत्तर दिया--उसकी ब्रह्मचर्य की आयु समाप्त हो चुकी है। ऋषियों के युग में भी ऐसा होता था कि कन्या युवा पति को वर लेती थी।

"ब्रह्मचर्येण तपसा कन्या विन्दते युवानं पतिम्"

मोतीराम की उग्रता के सम्मुख मधुर पराजय स्वीकार करने के लिये कर्तव्य का ज्ञान रहते रहते उसने मोतीराम के चंचल हाथों को अपने शिथिल हाथों में रोक कर समझाया—"जल्दी से विवाह का मंत्र पढ़ लो; ओं विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा............

वे दोनों रसोई और खाने पीने की बात भूल गये।

रात में चोरों के भय से मकान का दरवाजा बन्द करने की बात भी भूल गये।

× × ×

वेद प्रचार सभा कार्य की उपेक्षा न कर सकने के कारण प्रो० महाशय अभ्यास से कुछ पहले नींद से उठ बहुत सुबह की गाड़ी से लाहौर चले गये थे। दिन भर सभा के काम में भाग ले, घर पर

अकेली छोड़ी हुई युवा कन्या की चिन्ता ने उन्हें घर लौट आने के लिये विवश कर कर दिया। वे संध्या की गाड़ी से लौट पड़े।

स्टेशन पर रात के आठ बजे गाड़ी से उतर वे अपना मोट लोटा हाथ में और कागजों का बस्ता बगल में दबाये खेतों की राह पगडण्डी से मकान की ओर चल दिये।

रात बीत चुकी थी। चारों ओर वायु के अतिरिक्त सन्नाटा था। राह तीन मील के लगभग थी परन्तु फागुन के शुक्ल चौदस की चान्दनी से दिन सा प्रकाश चारों ओर फैला था, शीतल समीर के थपेड़ों से गेहूँ के सुनहरे होले नदी किनारे तक फैले खेत लहरें ले रहे थे। नदी किनारे से कभी कभी टिटिहरी तीखे स्वर में पुकार कर चान्दनी रात की निर्जन, नीरव शान्ति की गहराई की ओर उनका ध्यान दिला रही थी।

प्रो० घर में युवा लड़की के भविष्य की बात सोचते आ रहे थे:--यदि वह वेद प्रचार का कार्य इसी आयु से आरम्भ कर दे? परन्तु जिस समय वह सभा के मंच से ज्ञान और ब्रह्मचर्य का उपदेश देगी, विलासी लोग उसके नख-शिख को, केशों को, उभरे हुये वक्ष को देखेंगे। यदि वह केवल स्त्रियों में वेद प्रचार करे तब भी वह युवा पुरुषों के संग में आयेगी। विलासिता और वासना के संसर्ग में न आने से अब तक उसका ब्रह्मचर्य सुरक्षित है। परन्तु संसार तो विलासितों और व्यसनों से भरा है। उससे बचने के लिये व्यक्ति में स्वयं बल होना चाहिये। यह बल केवल संयम के अभ्यास से आता है। मैंने यह बल कितने अभ्यास से पाया है!

ब्रह्मचर्य व्रत कितना कठिन है—यह सोचते समय उन्हें अपनी इक्कीस वर्ष की आयु की फिसलन याद आ गई। इसके पश्चात कितनी कठोरता से उन्होंने वासना का दमन किया है। यह क्या सब लोगों के लिये सम्भव है?

उन्हें याद आया—ज्ञानवती की मां लाजो तब ऐसी ही थी जैसी ज्ञानवती अब है। लाजो के चिकने, यत्न से गूँथे केशों से आने वाली धनिये के तेल की सुगन्ध उनकी नाक में अनुभव हो गई। कुआर की ऐसी ही चांदनी रात में, मकान की छत पर ''''''। ज्ञानवती का कद लाजो से ऊँचा है, वह झुक कर चलती थी, यह सीधी।

इसके सीने उसकी अपेक्षा ... ।

एक झाड़ी से उनके जूते की ठोकर लग गई और वे गिरते गिरते बचे। उसी समय नीरवता भंग कर टिटीहरी ने तीखे स्वर में चेतावनी सी दी। प्रो० महाशय ने सचेत हो अनुभव किया उनके रक्त का वेग तीव्र हो गया है और शरीर उत्तेजित। उन्होंने प्राणायाम से श्वास रोक रक्त के वेग को शांत किया। गायत्री मन्त्र पढ़ा और अपने आपको फटकारा—वह तुम्हारी पुत्री है। संसार की सब युवा स्त्रियां तुम्हारी पुत्री, बहनें और माता हैं। वे सोचने लगे ब्रह्मचर्य के तप का पालन कितना कठिन है। ब्रह्मचर्य के अमूल्य रत्न को मनुष्य से लूट लेने के लिये कितने दस्यु-विचार मनुष्य के पीछे पड़े रहते हैं। ज्ञानवती क्या इस शरीर को लेकर......उन्होंने फिर अपने आपको चेतावनी दी—स्त्री के शरीर का विचार मन में न आना चाहिये। मन को शांत करने के लिये वे निरंतर गायत्री मंत्र का पाठ करते गये।

मकान के दरवाजे इतनी रात में खुले पाकर उन्हें सहसा नौकर और लड़की की बेपरवाही पर क्रोध आ गया। रोशनी भी नहीं जल रही थी। ऐसी अवस्था में कोई भी चोर भीतर घुस सकता था।

बिना पुकारे वे भीतर चले गये। पहले कमरे के बाद अपने कमरे से ज्ञान के कमरे की ओर। रोशनदानों और खिड़कियों से खिलखिलाती चांदनी का प्रकाश भीतर यथेष्ट आ रहा था। ज्ञान के कमरे के दरवाजे पर वे उसे पुकारना ही चाहते थे कि सामने चारपाई पर नौकर के साथ लड़की को देख कर उनके हाथ का डण्डा उठ गया और आहट पाकर उठ खड़े हुए मोतीराम के कन्धे पर पड़ा।

मोतीराम एक चोट खाकर आंगन के दरवाजे की ओर से भाग गया। प्रो० महाशय का दूसरा, तीसरा डण्डा ज्ञान पर पड़ा। ज्ञानवती हाथ उठा कर चोट से बचने का यत्न कर रही थी परन्तु मुख से कुछ कह न सकी।

प्रो० डण्डा परे फेंक अस्त-व्यस्त वस्त्रों में चारपाई पर पड़ी ज्ञानवती को थप्पड़ों और घूसों से पीटने के लिये उस पर झुक पड़े। उनके हाथ ज्ञान के शरीर पर जहाँ तहाँ पड़ रहे थे। ज्ञान के शरीर का स्पर्श उनके हाथों को शक्ति दे रहा था। कुछ ही समय पूर्व चांदनी में पगडण्डी पर चलते समय ज्ञान के इसी सीने की तुलना लाजो के

सीने से करने का चित्र उन के मस्तिष्क में ताजा हो गया। उनकी क्रोध से धुन्दली दृष्टि अठारह वर्ष पूर्व का चित्र देखने लगी। उनके हाथ ज्ञान के शरीर को पीटने की अपेक्षा गूंथने, नोंचने और पकड़ने लगे।

चोट की मार चुपचाप सहती ज्ञान अब पिता के उच्छृङ्खल हाथों को रोकने का यत्न करती हुई विरोध में बोली—"पिता जी आप क्या कर रहे हैं ?"

प्रो० विमूढ़ हो चुके थे। उन्होंने उसकी पुकार रोकने के लिये उसके मुख पर हाथ रख उसे शक्ति से वश में करना चाहा परन्तु ज्ञान तिलमिला कर उनकी पकड़ से छूट गई और फुफकार कर बोली—"पिता जी आप मुझ से व्यभिचार करना चाहते हैं। ऐसा पाप नहीं करने दूंगी !"

दांत पीस कर ज्ञान को फिर पकड़ने का यत्न करते हुये प्रो० ने कहा—"पापिन तू नौकर के साथ व्यभिचार नहीं कर रही थी ?"

ज्ञान ने प्रो० को दोनों हाथों से दूर रखने का यत्न कर निर्भय ऊंचे स्वर में उत्तर दिया—"नहीं, मैंने ब्रह्मचर्य से युवा पुरुष को वरा है; मैंने गर्भाधान मन्त्र का पाठ कर लिया था।"

प्रो० को काठ मार गया। वे एक क्षण निर्वाक ज्ञान की ओर देखते रहे और फिर चुपचाप, लड़ाई में हारे हुये सांड की तरह, तेज कदमों से मकान के बाहर चले गये।

उज्ज्वल चांदनी का चांद पश्चिम की ओर ढलने लगा था परन्तु प्रो० अब भी तेज कदमों से घर की परिक्रमा किये जा रहे थे। आत्मग्लानि से उनका मन चाहता था कि ईंट या पत्थर मार कर सिर फोड़ लें। जीवन भर के व्रत और साधना को वे कैसे खो बैठे ? ऐसे हीन और तिरस्कृत जीवन से क्या लाभ ? वे समाज को, संसार को मुख दिखाने लायक नहीं हैं। आत्महत्या के सिवा उनके लिये उपाय नहीं।

प्रो० के कदम व्यास नदी के पुल की ओर उठने लगे। पुल से जल में गिर कर समाप्त हो जाने से अच्छा आत्महत्या का दूसरा मार्ग नहीं आत्महत्या के दृढ़ निश्चय से पुल की ओर चले जा रहे थे। और सोचते जा रहे थे अब उनका जीवन पवित्र उद्देश्य के लिये निरर्थक है। यदि वे आत्महत्या नहीं करेंगे तो क्या करेंगे ?

अपने आत्मा की सद्गति के लिये, मृत्यु के समय मन को शांत और पवित्र रखने के लिये प्रो० 'ओ३म्' शब्द और गायत्री मंत्र का पाठ करते जा रहे थे और कामना कर रहे थे पुनर्जन्म में वे पूर्ण ब्रह्मचारी तपस्वी बनें।

पुल पर पहुँचते ही टिटीहरी ने फिर बहुत तीखे स्वर में पुकारा। प्रो० के शान्त मन ने सोचा—भगवान अब यह क्या चेतावनी दे रहे हैं? सहसा उन्हें ऋषि वचन याद हो आया—

"असूर्यानाम् ते लोका अन्धेन तमसावृता,
तांस्ते प्रीत्याभि गच्छन्ति ये केच आत्महनो जनाः।"

(आत्म-हत्या करने वाले तो प्रकाश से शून्य नरक लोक में जहां सूर्य भी नहीं पहुँचता, जाते हैं।)

प्रो० ने सोचा—पाप से पाप नहीं धुल सकता। पाप का अन्त प्रायश्चित्त और तप से ही हो सकता है।

पुल पर वायु अधिक शीतल था। वे बैठ कर सोचने लगे—एकान्त के एक क्षण में पथभ्रष्ट हो जाने से जीवन के उद्देश्य को, परमात्मा के कार्य को क्यों छोड़ दूँ? स्त्री का संग कर्तव्य का शत्रु है। मैं कल ही पूर्ण सन्यास ग्रहण करूंगा या......जीवन में गृहस्थ की आवश्यकता को पूर्ण करता हुआ अपना काम करूँ?...... नहीं यह मेरे सम्मान के अनुकूल न होगा। मैं सन्यास ग्रहण करूँगा। वे पुल से मकान पर लौट आये।

उन्होंने शीतल जल से स्नान किया और नींद में सोई ज्ञानवती को भी जगाकर ऐसा ही करने के लिये कहा। उन्होंने हवन किया और यज्ञ की पवित्र अग्नि के सम्मुख बैठी ज्ञानवती को उपदेश दिया।— "कल तुमने असंयम और पाप किया है। कन्या का विवाह माता-पिता की अनुमति से होने पर ही उसे गृहस्थ का अधिकार होता है। इसी अपराध का दण्ड मैंने तुम्हें दिया था। आज मैं सन्यास ग्रहण करूंगा। आश्रमों का पालन सब को विधिवत करना चाहिये। मैं योग्य वर से तुम्हारे विवाह की व्यवस्था करूंगा। पाप को छिपाना पाप है। परन्तु तुम इस पाप का चर्चा कभी भूलकर भी न करना अन्यथा तुम्हारा जीवन कलंकमय और कष्टमय हो जायगा। उचित जीवन ही धर्म का उद्देश्य है। धर्म रक्षा के लिये यही आवश्यक है।"

८

जिम्मेवारी—

प्रभा जब डॉक्टरी में भरती होने चली घर में विरोध हुआ था। परन्तु वह भरती क्या ? विरोध उसका किस बात में नहीं हुआ ? बचपन में, स्कूल में पढ़ते समय वह पढ़ने में तेज थी। परन्तु दुलार होता था उन लड़कियों का, जिनके नौकर मोटर में लाकर छोड़ जाते थे। मैट्रिक में उसके नम्बर सबसे अधिक आये थे। उसे स्कूल की छात्रवृत्ति मिलने की आशा थी। परन्तु वह मिली स्कूल के अवैतनिक मंत्री की लड़की उर्मिला को ! क्योंकि प्रभा के पिता लड़की को सात वर्ष और डाक्टरी कालिज में पढ़ाने के लिये तैयार न थे।

इस अड़चन के बाद प्रभाने सोचा बी. ए. ही पास करले ! माता पिता को इस में भी कोई लाभ दिखाई न देता था परन्तु उन्होंने उसे कालिज में भरती करा दिया। बेचारे नौकरी पेशा थे लड़की के लिये सहसा योग्य वर का प्रबंध कर लेना उनके बस का न था। सोचा—पढ़ाई लिखाई से लड़की की कीमत जितनी बढ़ जाये, उतना ही उनका पलड़ा उठता जायगा। दहेज के पलड़े में उन्हें ही कम चढ़ाना पड़ेगा। और फिर, आधुनिक उन्नति के युग में ऐसे भी लोग हैं जो विद्या की क़द्र रुपये से अधिक करते हैं। लड़की का दिमाग़ अच्छा था, इसमें तो किसी को भी सन्देह न था।

इस बीच प्रभा के विवाह की बात कई बार चली। आज कल का ज़माना है कि लड़के लड़की देख कर ब्याह करते हैं। वो देख क्या लेते हैं ? यही तो देख लेते हैं कि चेचक के दाग हैं या नहीं ? दोनों आंखें साबित तो हैं। और फिर यदि ब्याह के लिये स्वीकृति के निरीक्षण के समय चेचक के दाग छिपा भी लिये जांय

तो पड़ोसी और रिश्ते के लोग तो दूसरे की असुविधा से ही अपना मन रंजन करते हैं; वे पहले ही आकर बता आते हैं। लड़की के चेहरे पर इंटर और बी. ए. तो दिखाई नहीं देता; दिखाई देते हैं—हल्के हल्के चेचक के दाग। और लज्जा कर, चेहरे पर खून दौड़ आने से दाग कुछ और उभर आते हैं। प्रभा के पिता पाउडर पंथी को घृणा की दृष्टि से देखते थे कि बाद में गाली सुननी पड़े और बेचारी लड़की पर जाने क्या बीते ? लड़की की बड़ी बड़ी आंखें झुकी रहती हैं। सुन्दर आंखें दिखाने से लज्जा दिखाना ज्यादा जरूरी होता है। और पढ़ाई, लिखाई ?……लड़की बोल तो पाती नहीं ! बोलना चाहिये भी नहीं।

देखी जाने की परीक्षा में फेल होना, लड़की के लिये और सब परीक्षाओं की सफलता से कहीं अधिक मरणान्तक है। और, इस परीक्षा में उसका कोई परीश्रम भी सहायक नहीं हो सकता। यदि वह यत्न करे तो वह कितना उपहासास्पद होगा, कितना अपमान जनक ? प्रभा जब इस परीक्षा में फेल हुई तो उसका मन चाहा कि आत्महत्या करले ! क्योंकि यह एक तरह से स्त्री जीवन का अंत था। परंतु इतनी निलज्जता कैसे दिखाती ? फिर उसने सोचा—निराश जीवन में बी. ए. पास करेगी और कुछ कर लेगी !

इसके बाद वह कभी अमीनाबाद और हजरतगंज में मोटरों पर घूमने वाली लड़कियों को सिर के केश ऐंठाये और शरीर की बनावट को गर्व से दिखाने के ढंग से साड़ी पहन, चेहरे की श्यामलता और दागों को गहरे पाउडर से ढंके और आंखों को सुरमे की लकीरों से लम्बी बनाये देखती तो सोचती, यह सब क्या वह नहीं कर सकती ? परन्तु उसके परिवार के विचार और मुहल्ले के आचार से जीवन का यह सब उत्साह अनुभव करना उचित न था; उसे इसका अधिकार नहीं था। इसका अधिकार उन्हीं को है जो मोटरों पर बैठ ईर्षा करने वालों पर धूल फेंकती हुई निकल जा सकती हैं।

इसलिए १६४२ में जब प्रभा के बी. ए. पास कर के घर में नौ मास बेकार बैठ लेने पर उसके पिता ने प्रभा के लिए कन्या पाठशाला में पैंसठ रुपए मासिक की नौकरी ढूंढ निकाली तो प्रभा ने विरोध कर, फौज के दफ्तर में सुविधा से मिल सकने वाली क्लर्काई की २५०)

माहवार की नौकरी करने की जिद की।

उसकी निन्दा में कहा गया—"बड़ी दिलेर लड़की है भाई !" परन्तु समाज को वह कहां तक संतुष्ट करती जाती ? समाज ने उसके साथ जो कुछ किया था, वह भूली न थी। समाज तो कहता था—जिंदा भी रहो और सांस भी न लो ! वैकाई की नौकरी करके भी वह अपने मुहल्ले का आचार लिखाए जा रही थी। वह मुहल्ले की लड़की या कन्या पाठशाला की अध्यापिका ही दिखाई पड़ती थी, वैकाई कि मिस नहीं।

एक चोट उसे यहां भी लगी। हिंदुस्तानी कर्नल साहब को एक वैकाई सेक्रेटरी की जरूरत थी। वैकाइयों में प्रभा बहुत अच्छी अंग्रेजी लिखने वाली गिनी जाती थी परन्तु तरक्की मिली मिसेज लतीफ को जो साइकॉलोजी (Psychology) के स्पैलिंग भी नहीं जानती थी। परन्तु खूब जानती थी कमनीय ललना बनने की कला। मिसेज लतीफ का बटुआ, कंधे से लटका रहता। डाकिए के थैले की तरह वह बटुआ जितना बड़ा था, पैसे उसमें उतने ही कम रहते। पैसे से अधिक उपयोगी चीजें उसमें रहतीं—पाउडर का पफ, आइना, लिपस्टिक और नेलपेन्ट। मिसेज लतीफ के गर्दन तक फैले बाल खिले खिले रहते, जैसे काला रेशम धुन दिया गया हो! चेहरा पाउडर से ऐसे ताजा रहता जैसे बढ़िया सिन्दूरी आड़ू अभी डाल से टपका हो! ओठों पर लगा हुआ लाल धनुष बना रहता। और इस धनुष से छूटे तीर आंखों से गुजर कर कानों की ओर खिंचे रहते। ऊबड़ खाबड़ भवें बनाने पेन्सल से सुधार दी गई थीं। इस योग्यता की कद्र में मिसेज लतीफ को कर्नल साहब के सेक्रेटरी की जगह और एक सौ माहवार की तरक्की मिल गई। बाजार में यह सब साधन प्रभा के लिये भी मौजूद थे। परन्तु अपने परिवार और मुहल्ले में रह कर वह यह सब न कर सकती थी। अपने पतले ओंठ दबा प्रभा ने सोचा—औरत के लिये बी. ए. पास करने का मोल ?

शीलांग में अधिक वैकाइयों की आवश्यकता थी। वहां भेजी जाने वाली लड़कियों को पचहत्तर रुपये मासिक भत्ता दिया जा रहा था फिर भी लड़कियां अपने शहर से बाहर जाती कतरा रही थीं। प्रभा ने इसे स्वीकार कर लिया। अपनी जिन्दगी से ईर्षा करने वाले

आवाज़ से वह जितनी दूर भाग जाये !

सरकारी पास पर फर्स्ट क्लास में सफ़र करती हुई प्रभा जब साधारण धरातल से ऊंचे शीलांग में पहुँची तो उसने अनुभव किया कि वह संकीर्णता और बन्धन की दुनिया पीछे छोड़ आई। अड़तालीस घण्टे से अधिक लम्बे सफ़र में प्रभा का रूप बदलता जा रहा था। वहां यह कहने वाला कोई नहीं था कि—अरे, कल तो यह कुछ और थी ! जब वह शीलांग के येकाई हैड क्वार्टर में पहुँची, लोगों ने देखा—नई आने वाली लड़की काफ़ी फ़ैशनेबल और खूबसूरत है।

मिस ईलवुड 'लीला' तीन माह पहले से शीलांग में थी, उसने प्रान्त के नाते प्रभा से आते ही बहनापा और सहेलापा जोड़ लिया। जल्दी ही लीला ने उसका परिचय कई जगह करा दिया। दफ़्तर के बाद सन्ध्या समय इन लड़कियों को अफ़सरों की पार्टियों में या अकेले दुकेले में भी, बार और रेस्टोरां में चाय और खाने के निमंत्रण प्रायः मिलते ही रहते थे।

पिछले युद्ध में अंग्रेज साम्राज्यशाही के मोर्चों के बहुत देशों में दूर दूर तक फैल जाने के कारण, इस देश के दबे पीसे, सफ़ेद पोश मध्यम श्रेणी के नौजवानों को भी अच्छी फ़ौजी नौकरियां पा कर, संतुष्ट जीवन की झांकी लेने का अवसर मिल गया। बहुत से पढ़े लिखे लोग जल्दी में जैसी तैसी ट्रेनिंग पूरी कर फ़ौज के शाही कमीशन (किंग्स कमीशन) के अफ़सरी दर्जों में जगह पा गए। अंग्रेज अफ़सरों की वर्दी पहन कर यह लोग, सहसा उचक कर, अपने समाज से ऊंचे हो गये। ग़रीबी और डर से बच कर इनके मन में ग़रीबी और डर के लिये तिरस्कार पैदा हो गया, जैसे राह में मरे पड़े सांप को ठुकरा कर आदमी साहस अनुभव करता है। जीवन में जितनी आशा वे लोग कर सकते थे, उससे कहीं अधिक तनख्वाह उन्हें मिलने लगी। वे लोग एक दूसरे की स्पर्धा में अधिक पैसा फेंक कर दिखाते। उनके कंधे परिश्रम के बोझसे दब नहीं रहे थे बल्कि गौरव से अकड़ गए थे। इन हिन्दुस्तानी साहब अफ़सर लोगों के लिए अंग्रेजी अफ़सरों की तमीज़ से रहने का अनुशासन था—सस्ती सवारी पर न चलना और दुकानदार से मोल भाव न कर नोट थमा देना। वे लोग चुस्त अंग्रेजी पोशाक पहन कर अंग्रेजी में

गाली देकर बात करते थे। निधड़क शराब पीते थे और निस्संकोच लड़कियों से बात करते थे। उन लोगों ने हिन्दुस्तानी भय और संकोचशीलता के बंधन तोड़ दिये थे। मन से सब तरह का डर दूर कर देने के लिये उन लोगों ने समाज का डर सबसे पहले छोड़ दिया था। युद्ध के कारण जगह जगह बार और रेस्टोरां खुल गये थे। वहीं इन लोगों का संध्या कटती और संध्या की प्रतीक्षा में दिन कट जाता।

मिस ईलवुड 'लीला' आगरा की देसी ईसाई लड़की थी। खूब बेझिझक और बहुत हाज़िर जवाब! स्थानीय 'खासी' लड़की बनालो ब्वानारा भी कम तेज़ न थी। वे प्रभा को भी संध्या की पार्टियों में ले जाने लगीं। गैर लोगों में बोलने और उनके बेझिझक मज़ाक से प्रभा को संकोच ज़रूर अनुभव हुआ परन्तु उसके मन ने उलट कर कहा—संकोच का फल बहुत देख लिया। और फिर इन लोगों से क्या संकोच? यह कौन बिरादरी में कहने जा रहे हैं?...... जहां का जैसा ढंग हो! और फिर सब बोल रहे हों तो चुप रहना, तमाशा बनना है।

पहले ही दिन जब प्रभा लीला और बनालो के साथ व्हाइटमोन (उजले उपवन) बार में गई, वहां मौजूद पांचों अफसर एक से एक तेज थे। लीलाने परिचय कराया—(बातचीत अंग्रेजी में ही होती थी क्योंकि कोई बंगाली, कोई मद्रासी, कोई मरहटा और बहुत से पंजाबी थे। "यह देखिए, हमारी नवागन्तुक सहेली--मिस प्रभा! और फिर उसने अफसरों का परिचय प्रभा को दिया—

"डाक्टर कैप्टन बोस! कैप्टन रुईकर, रायल सैपर्स। कैप्टन खन्ना, गढ़वाल राइफल्स! कैप्टन के० आचारी, एम. टी.।

कैप्टन बोसने एक बार फिर प्रभा को ऊपर से नीचे तक देख लीला से पूछा—"आपका नाम नहीं बताया?"

"क्यों? प्रभा"—मज़ाक समझ न पाने से लीला मुस्कराई!

"हूँ" बोसने पूछा "प्रभा, क्या मतलब होता है इसका?"

"प्रभा का मतलब है, रोशनी—प्रकाश" रुईकर ने अंग्रेजी में समझाया।

"ओह, यह आपका नाम है ?" बोस समझ पाने के भाव से बोला।

"जी हां नाम है और काम भी है।"—लीला ने बोस को उत्तर दिया।

प्रभा ओंठ दबा आंखें झपक कर रह गई।

के० कईकर ने प्रभा के समीप की कुर्सी पर हाथ रख पूछा—'यदि मैं यहां बैठूं तो आपको आपत्ती न होगी ?"

"जी नहीं, जरूर बैठिए !"—प्रभा ने साहस से मुस्करा कर उत्तर दिया।

कईकर ने अपना सिगरेट केस खोल सब से पहले प्रभा के सामने पेश किया।

"नौ थैंक्स"—प्रभा ने विनय से मुस्करा कर कहा—"मैं सिगरेट नहीं पीती।"

कई कर निराशा से ओंठ लटका कर बोला—'पहले ही कदम निराशा !" सिगरेट केस बनाली के सामने कर उसने पूछा—"और आप क्या कहती हैं ?"

बनाली ने कईकर को तिरछी निगाह से देख उत्तर दिया—"निराशा पर निराशा होने से दिल पर बुरा असर पड़ता है। मैं फिल हाल तुम्हें निराशा नहीं करूंगी।" उसने एक सिगरेट ले लिया।

सब हँस रहे थे, सब मुस्करा रहे थे और बार बार प्रभा की ओर देख रहे थे। प्रभा भी मुस्करा रही थी और अवसर की प्रतीक्षा में थी कि वह भी बोल कर झेंप मिटा दे।

लीला ने स्वयं हाथ बढ़ा कर सिगरेट ले लिया और होंठों में दबा मेज पर से माचिस उठा, एक सींख जला कर बोली—"लो मैं, सब के सिगरेट सुलगा दूं !"

बोस अपनी कुर्सी से आगे बढ़ कर बोला—'गनीमत है, कुछ लोग तो सुलगा देते हैं।"

सब लोग हंस पड़े। प्रभा ने कनखियों से देखा—बोस दूसरी ओर दीवार पर देख रहा था जैसे उसने उससे नहीं कहा। परन्तु सब

जानते थे, किसे कहा गया है। वह और भी लजा गई।

लीला बार बार पूछ रही थी—"कैप्टन बोस किसने सुलगा दिया दिल तुम्हारा ?"

बात टल गई और पंजाबी कैप्टन चावला सुनाने लगा कि कोहीमा के जंगल में भटक जाने पर कैसे बच कर निकला। जंगलों में नागा लोगों की बस्ती है, बहुत ही भयानक लोग। आदमी को देखते ही मार डालते हैं। गले में खुद कत्ल किए आदमियों के मुण्डों की माला पहने रहते हैं। कत्ल का उन्हें अभिमान है।

बोस ने टोक दिया—"कत्ल करने की निन्दा तुम कैसे कर सकते हो? तुम्हारा पेशा क्या है ?"

कैप्टन चारी के हुक्म से बैरा साहब लोगों के लिए ह्विस्की ले आया था और सब लोगों की इच्छानुसार गिलासों में सोडा डाल रहा था। दूसरे बैरे ने एक तश्तरी में गुलाब की कली के आकार की गिलासियों में गहरे लाल रंग का द्रव लेडीज के सामने पेश किया।

बनाली और लीला के थैंक्स कह कर गिलासी ले लेने के बाद तश्तरी प्रभा के सामने आई। वह जानती थी शराब है। इनकार करेगी और फिर मजाक होगा। फिर भी उसने सिर हिलाकर कह दिया—"नो थैंक्स।"

शंकर ने अत्यन्त निराशा से हाथ फैलाकर कहा—"हर बात में इन्कार।"

लीला ने भौं सिकोड़, उपेक्षा से कहा—"अरे क्या है, इसमें ? यह तो पोर्ट है, दवाई है। पूछ लो डाक्टर से !"

"नहीं"—बोस सिर हिलाकर बोला इस समय तो यह शराब ही है।" प्रभा निश्चेष्ट रह गई।

बोस अपना गिलास तिपाई पर रख विरोध के स्वर में बोला—"तो हम भी नहीं पीते सिर्फ एक ही जना अकेला क्यों स्वर्ग जाय !"

सभी लोगों ने कहा—"ठीक तो है !" और अपने-अपने गिलास ड्राइंग में तिपाइयों पर रख दिये।"

प्रभा शरम और उलझन में मरी जा रही थी। लीला ने उसे

फिर सम्बोधन किया—"लेलो प्रभा, इसमें कुछ नहीं। यह तो कुछ है ही नहीं। तुम्हारे साथ हम भी तो ले रही हूँ।"

प्रभा ने आंखें झपक मन में कहा—'आप जो हो" और गिलासी उठा ली।

चारी गिलास उठा कर बोला—'अच्छा भाई, किसके नाम पर? (प्रोपोज द टोस्ट) बास, बोलो, टोस्ट बोलो!"

गिलास ऊंचाकर बोस बोला—"नई रोशनी के लिये।"

सब लोगों ने कहा—"वाह, ठीक-ठीक" सभी को गिलास एक साथ होंठ से लगाते देख प्रभा को भी चखना पड़ा। मीठा-मीठा तीखा खटास लिये स्वाद था। लीला और बनाली एक घूंट में आधी-आधी गिलासी पी गई थीं। दो ही घूंट तो थे।

अपनी छूटी हुई बात शुरू करते हुये चान्दला बोला—'वार (लड़ाई) और मर्डर (क़त्ल) की क्या बराबरी?"

लीला बोल उठी—"ऑल इज फेअर इन लव एण्ड वार—(जंग और मुहब्बत में सब जायज़)"

उसकी ओर झुक कर रूईकर ने प्रश्न किया—'तुमने मुहब्बत में कितने क़त्ल किये हैं?'

भौंवें सिकोड़ लीला ने कहा—'तुम्हें मतलब? क्या मुकद्दमा चलाना चाहते हो?" सबकी ओर समर्थन के लिये देख वह हँस पड़ी।

रूईकर अपनी बात पर डट गया—"मर्डर का मामला तो जरूर चलना चाहिये। मगर क़त्ल होने वाला मुहब्बत की अदालत में अपील फरियाद करे तो न्याय तो होना ही चाहिये। क्यों बास? बोलो।"

बास ने सिगरेट से लम्बा कश छत की ओर छोड़कर उत्तर दिया—"तो इस अदालत से क़ातिल को ब्यूटी मैडल (सौन्दर्य पदक) मिल जायेगा।"

सब जोर से खिल खिला उठे। प्रभा केवल मुस्करा कर रह गई। उसने बास की शरारत के कारण उसकी ओर कनखियों से

देखा और देखा कि वह उसकी ओर नहीं देख रहा था—"बड़ा बेला है—" मनमें उसने कहा।

इसके बाद चावला के आर्डर से साहब लोगों के लिये ह्विस्की का दूसरा चक्कर और लेडीज के लिये फिर पोर्ट आई। प्रभा ने फिर इनकार किया। अब की बोस ने उसे सम्बोधन कर कहा—"अब आप फौज में हैं। साथ दीजिये! फौजी लोग अच्छे बुरे में सदा साथ देते हैं।"

पहली गिलासी के बाद कुछ घबराहट न अनुभव हुई थी। प्रभा ने संकोच से मुस्करा कर दूसरी गिलासी भी लेली।

अब, उस समय शीलांग में चलने वाली, फिल्म "दी ग्रेट डिक्टेटर" के बारे में बात चलने लगी। प्रभा पिछली सांझ ही लीला के साथ वह फिल्म देख आई थी। वह भी बोलने लगी। दो गिलासियों के बाद गर्दन स्वयं उठ गई थी। बोलने को मन चाह रहा था। और वह अनुभव कर रही थी कि वह बोलती है तो लोग चावसे सुनते हैं। कितना अच्छा लग रहा था।

यों अफसरों को सांझ आठ बजे छावनी में लौट आना होता था परन्तु वह शनिवार की रात थी। वैकाइयों का बंगला छावनी की सीमा के बाहर था। बोस को भी, छावनी में स्थान की कमी के कारण, बाहर बंगला मिला हुआ था। बनाली, रुईकर और चारी के साथ 'लेट नाइट डांस' (नाच) में चली गई। लीला और प्रभा चावला और बोस के साथ सिनेमा गई। लीला और प्रभा बीच में थी। एक ओर लीला के साथ चावला और दूसरी ओर प्रभा के साथ बोस बैठा था। प्रभा झेंप नहीं रही थी परन्तु याद था—जवान मर्द साथ बैठा है।

लौटते समय बादल छंट गये थे और शीलांग की आधी रात की कड़ाके की सर्दी थी। प्रभा सर्दी से सिकुड़ी जा रही थी परन्तु मन में सुखद गरमी थी। अच्छा लग रहा था। भीतर गरमी हो तो बाहर सर्दी अच्छी लगती है। वैकाई क्वार्टर के बंगले के दरवाजे पर उन लोगों ने "चीरियो-चीरियो" पुकार के विदा ली।

बन्द कमरे की गरमी में, बिजली की रोशनी में प्रभा को बहुत भला लग रहा था। उसने रात के सोने के नये सिलाये रेशमी कपड़े

पहने। चेहरे पर कोल्ड क्रीम लगा कर बालों में बलरे, लहरें बनाने के लिये रेशमी रूमाल से बांध लिया। आइने की ओर मुस्करा कर उसने देखा—खामुखा उसे बिगाड़ कर भद्दा बना कर रखा गया था। अब वह स्वतंत्र है और जी रही है।

बिस्तर में घुस बिजली बुझा देने के बाद अन्धेरे में उसे सांझ की पार्टी की बातें याद आने लगीं। वह सबको कितनी अच्छी लग रही थी। अच्छी लगना क्या चीज है? जिन्दगी है! वह कल्पना कर रही थी--कल अपना नया फिट जम्पर पहनेगी, जो कमर पर साड़ी से एक इंच ऊंचा फिट होता है। वह नए खरीदे विलायती आंगिया (बाडिस) से शरीर पर आनेवाले उभार की बात सोचने लगी। साड़ी को कमर पर खींच कर और कन्धे पर एक ओर समेट कर चलेगी तो नजरों पर तैरती हुई! उसे सैकड़ों चमकती हुई आंखें कल्पना में दिखाई दे गई। जैसे निर्मेघ काले आकाश में तारे चमचमा रहे थे। वह आराम और उत्साह के झूले में झूलती हुई सो गई।

प्रभ को अनुभव हो रहा था—उसे सड़ियल गोदाम में मूंद कर रखा गया था। दरवाजे तोड़ वह बाहर निकल आई है और स्वच्छ, स्वतंत्र वायु में श्वास ले रही है। शीलांग की जलवायु उसके शरीर को स्फूर्ति दे रही थी और लोगों पर अपने अस्तित्व का प्रभाव उसके मन को शक्ति दे रहा था। कहां तो वह मन मारे सोचती रहती थी—दुनिया में उसके लिए यह भी नहीं, वह भी नहीं, कुछ नहीं। और अब वह सोचती थी—कहां 'हां' करे? अब निमंत्रण स्वीकार करने की अपेक्षा इनकार करने में अधिक गर्व अनुभव होता था। इस में मानसिक समृद्धि का संतोष था।

पार्टियां तो होती ही रहती थीं शनिवार की रात लम्बी पार्टी होती। अफसरों के लिये इन पार्टियों का मतलब होता कर्जा। लीला को किसी अफसर से पूछ लेना होता—"आज कहां जा रहे हो?"

बनाली खानोमा बुलाने पर मुस्कराकर मान जाती। नीता और प्रभा को सोचना पड़ जाता—"कहां जायें? कहां इनकार करें?" पर प्रभा को बोस की चुटीली बातें अच्छी लगती थीं और तुर्की-बतुर्की जवाब दे लोहा लेने में मजा आता था। और जब बोस खूब साफ मूंडे, पतले होंठ दबाए, भवें सिकोड़े नाखूनों से कुर्सी की बाहों पर

उबलासा बजाता रहता, तब भी अच्छा लगता। कभी कभी वह लगा-लार उसकी ओर देखता रह जाता तो प्रभा को आंखें फिरा लेनी पड़तीं। प्रभा को अपने चेहरे पर वह आंखें गड़ने से बुरा नहीं लगता था। खून में एक चुटकी सी अनुभव हो जाती।

उस शनिवार की पार्टी में अफसर लोग ह्विस्की के तीसरे चक्कर में थे। लेडीज, पोर्ट की तीसरी गिलासी चूस चुकी थीं। कैप्टन श्रीवास्तव खानोमा से खासी समाज के मातृसत्ताक पारिवारिक ढंग पर मजाक कर रहा था। रूईकर इस प्रथा की ऐतिहासिक व्याख्या करने लगा। नशे की शिथिलता के कारण बहस बहकती जारही थी।

लीला को इस रूखे विवाद में रस नहीं आ रहा था। वह बोस के सामने बैठी थी। सिगरेट का एक लम्बा कश बोस की ओर छोड़ते हुये बोली —'तुम ऐसे घूर क्यों रहे हो जी ?"

प्रभा जानती थी बात उसे ही लगाई गई है। बात को उलटने के लिये उसने लीला को सम्बोधन किया—"तो तुम किसी को घूर रही थीं कि वह किधर घूर रहा है ?"

बोस ने इस पैंतरे का फायदा नहीं उठाया और लटकते हुए स्वर में बोला—"देखने लायक चीज हो तो देखा ही जाता है।" उससे संतोष होता है।

हंस कर तीखे स्वर में लीला ने विरोध किया—"देखिएगा या आंखों से निगल जाइएगा ?"

बोस और बढ़ गया—"अगर निगल जाने का ही निमंत्रण हो ?"
लीला होंठों पर हाथ रख खिलखिला उठी—"या मेरे अल्ला, डाक्टर को चढ़ गई !"

खानोमा ने गुलाबी से आंखों के कोने से बोस की ओर देख और ओठों के कोने से धुएं का फुहारा छोड़ते हुए चेतावनी दी—

"दोस्त, सौंदर्य दर्शन की वस्तु है स्पर्श की नहीं !" ब्यूटी इज टु सी, नॉट टु टच)

बोस ने गिलास में बचा हुआ घूंट निगल कर पूछा—"सौन्दर्य है किस लिये ? सौन्दर्य है क्या ?"

लीला ने ठोढ़ी के नीचे उंगली रख उत्तर दिया—'फूल

सौन्दर्य है।"

ऊंचे स्वर में बोस ने तुरन्त उत्तर दिया—"तभी तो फूल, फूल ही नहीं रहता, फल बन जाता है। यही सौन्दर्य का उपयोग है।"

श्रीवास्तव ने अपनी जगह से हाथ हिला कर कहा—"सभी फूलों में सुगन्ध नहीं होती।"

"तेज सुगन्ध वाले फूलों में फल नहीं लगते" वे केवल सजावट के लिए होते हैं। रूईकर बोला—'और यह गढ़ा हुआ सौन्दर्य हमें तो नहीं भाता! कौन जाने पाउडर की तह के नीचे क्या है? कितनी झुर्रियां या चेचक के दाग! लिप स्टिक की तह के नीचे क्या है? शायद सूखे हुए छुहारे की फांकें!"

प्रभा को बहुत बुरा लगा—"यह क्या बक रहा है?"

लीला ने नाराजगी दिखलाने के लिये कहा—"कैप्टन तुम बहुत बढ़ गये!"

खानोमा ने मुस्करा दिया—"जल भुन कर आदमी ऐसे ही कहता है।" परन्तु बोस बोला—"सुनो रूईकर तुम हो पागल! पाउडर की तह के नीचे क्या है? इससे तुम्हें मतलब? क्या तह में जाना चाहते हो? सुन्दर कोमल चमड़ी के नीचे क्या होता है? तुम्हें सुन्दर चमड़ी बहुत आकर्षक जान पड़ती है? अगर तुम्हें किसी स्त्री की चमड़ी उतार कर सौंप दी जाय, क्या करोगे! यह तो शरीर और शृंगार का समन्वय है जो परिष्कृत सौन्दर्य बनाता है!"

प्रभा ने कृतज्ञता से उसकी ओर देखा—बोस के माथे पर उसे प्रतिमा झलकती दिखाई दी।

"यह दर्शन शास्त्र हमारे बस का नहीं भाई"—खानोमा उठ खड़ी हुई। चावला की ओर सम्बोधन कर वह बोली 'चलते हो डांस पर?"

रूईकर ने बोस को सम्बोधन किया—"फिल्म देखोगे?"

"नहीं आज चांदनी में घूमेंगे।" बोस ने उत्तर दिया।

प्रभा ने उठ कर अपना ओवर कोट सम्भाला। बोस ने उसका कोट ले सहायता के लिये हाथ उसकी पीठ पीछे फैलाकर थाम लिया। और धीमे से पूछा—"चांदनी में थोड़ा घूम आयें?"

उसी समय रुईकर ने भी प्रभा को सम्बोधन किया—"फ़िल्म देखी जाय ?"

प्रभा ने विनय से मुस्करा कर उसे उत्तर दिया—"आज माफ़ करो !" वह बोस की ओर बढ़ गई।

वे लोग "संथिया" से पगडण्डी की राह की बस्ती के चारों ओर घूम जाने वाली सड़क पर उतर गये। दोनों चुप थे। चुप्पी तोड़ने के लिये बोस बोला—"कैसी पगली चाँदनी है ?"

"तुम तो वैसे ही पागल हो !"—प्रभा के मुंह से निकल गया।

"क्यों ? क्या सचमुच ?"—उसकी ओर देख बोस ने पूछा।

"बातें जो ऐसी करते हो ?"—प्रभा आंखें झुकाये रही।

वे लोग कचहरी के पास से जा रहे थे। वैकाइयों का बंगला बाईं ओर समीप ही था परन्तु बोस डाकखाने की ढलवान से निराली राह की ओर उतर गया। प्रभा झिझकी परन्तु चलती गई।

"ऐसी कौन बात की मैंने ?"—बोस ने पूछा

"मुझे नहीं मालूम।"

"तुम नाराज़ होगई ?"

"नहीं, कब कहा मैंने ?"

सूनी सड़क पर उनके जूतों की खट-खट स्पष्ट सुनाई देती थी। उनकी आंखें कल्पना में एक दूसरे को स्पष्ट देखती हुई, चांदनी में काले दिखाई देते ऊंचे वृक्षों और दूर दूर काले वृक्षों के नीचे चांदी की तरह चमकती टीन की छतों पर घूम रही थीं।

"अगर कोई किसी को अच्छा समझ कर आकर्षित हो तो यह क्या अपमान करना हुआ ?"

"मुझे नहीं मालूम !" प्रभा ने कठिनाई से उत्तर दिया।

"क्या तुम्हें सचमुच नहीं मालूम ?"

"क्या ?"—अब की प्रभा का स्वर अधिक स्पष्ट था।

"कि मैं तुम्हें इतना चाहता हूं।"

प्रभा चुप

"तो मुझे खेद है। तुम मुझे नहीं चाहती ?"

प्रभा क्या उत्तर देती—"हम बहुत दूर आगए !"—उसने कहा।

'तुम्हें मेरा साथ अच्छा नहीं लग रहा। मुआफ करना ! चलो लौट चलें !"

"कब कहा मैंने"—मीठी झुंझलाहट से प्रभा बोली—"यों ही दोष लगा रहे हो !"

"बोस ने उसे सहारा देने के लिये उसकी बांह अपनी बांह में लेली और रुक-रुक कर अपनी बात कहता रहा। प्रभा चुप थी। बोस ने असंतोष से कहा—'तुम क्यों चुप हो ? तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा ?"

"क्या कहूँ ? तुम जानते तो हो।"—प्रभा कह गई परन्तु उसका दिल ऐसे धड़क रहा था जैसे बहुत चौड़ी खाई कूद जाने से हांफ गई हो।

ग्यारह बजे रात प्रभा बंगले में अपने कमरे में पहुँची तो असंतोष था—क्यों उसने बोस को देर होने की बात कही ? अभी वे लोग कुछ देर और घूमते ! और उसे याद आ रहा था कि वह यह कहना चाहती थी, वह कहना चाहती थी पर कह नहीं पाई।

बिस्तर में लेटने से पहले उसने चेहरे को सुबह ताजा और कोमल बनाने का और बालों में प्यारी प्यारी लहरें डालने का प्रबंध किया तो आइने में अपने प्रतिबिम्ब की ओर मुस्करा कर कह रही थी—बोस को कितना अच्छा लगेगा !

नींद न आने पर भी जब वह आंखें मूंदे लेट गई तो उसे निर्मेघ काले आकाश में, चम-चमाती आंखों की तरह अनेक नक्षत्र नहीं दिखाई दिये। चांदनी रात के आकाश में केवल एक चन्द्रमा दिखाई दिया—बोस !

प्रभा उत्कट उत्सुकता में संध्या की प्रतीक्षा करती पार्टी में जाती तो कनखियों से बोस के संकेत की प्रतीक्षा करती रहती कि उठ कर चल दें। बोस की ओर कई बार वह देख चुकी थी। बोस दूसरा पेग ले रहा था। प्रभा को लग रहा था—इस में क्या रखा है ? बोस के साथ घूमने और टूटे टूटे स्वर में बात करने की अपेक्षा पोर्ट और ह्विस्की में क्या रखा है ! फिजूल है ! समय बरबाद करना है !

आखिर बोस ने एक सिगरेट सुलगा कर साथियों की ओर

देखा—"हम जा रहे हैं । एक काम है ।"—प्रभा को उसने सम्बोधन किया—"आप चलेंगी ? आपको नोमन के यहाँ जाना था ?"

"हाँ काफी देर तो हो गई ।"—वह तुरंत उठ खड़ी हुई ।

वे दोनों अंधेरे में संथिया से मलाने वाली पगडण्डी पर कंधे से कंधे सटाये सड़क पर उतर गये । आगे समतल सड़क थी परन्तु सड़क छोड़ वे फिर बड़ी झील की ओर उतरने वाली पगडण्डी से उतरने लगे । संकरी पगडण्डी के पत्थरों पर लुढ़क कर एक दूसरे के कंधे का सहारा लेना अच्छा लग रहा था ।

बोस अतीन्द्रिय (आध्यात्मिक-मानसिक) प्रेम और शारीरिक प्रेम की व्याख्या करता जा रहा था । वह पी लेता था तो दार्शनिकों की तरह बात करने लगता था । प्रभा को भी यह अच्छा लगता था—व्यक्तिगत रूप से जो बात कहना कठिन हो उसे सिद्धांत रूप से कह देने का साहस सरलता से किया जा सकता है ।

प्रभा कह रही थी—"प्रेमी के सामने न होने पर भी उससे प्रेम जारी रहता है । इसलिये प्रेम इन्द्रिय की अपेक्षा मन का विषय है । प्रेम में मर जाने से भी तो सुख होता है । लोग आत्म-हत्या नहीं कर लेते ? उसमें इन्द्रिय तृप्ति तो नहीं होती परन्तु प्रेम का चरम संतोष हो सकता है ?"

बोस कह रहा था—"मन को तुम यदि भौतिक पदार्थ न भी मानो तो जिसे कभी आंखों से नहीं देखा जिसे, जानते ही नहीं, उससे तो प्रेम नहीं किया जा सकता । प्रेम करने से पहले जानना जरूरी है । प्रेम का एक अर्थ बहुत अधिक जान लेना और, और भी अधिक जानने की कामना भी तो है ? जिसे कम जानते हैं, उसे प्रेम नहीं कर सकते ! जाना जाता है, इन्द्रियों से । इसलिये, प्रेम का आरम्भ होता है, इन्द्रियों से ! तो, उसका पूर्णता भी इन्द्रियों से ही सम्भव है ।" और एक बात सृष्टि में प्रेम का क्या प्रयोजन है ? यदि समाज में सब लोग केवल मानसिक प्रेम ही करें ? इन्द्रियों से प्रेम का सम्बंध न होने दें ? तो समाज का या प्रेम का परिणाम क्या होगा ?... शून्य ! फिर प्रेम करने वाले रहेंगे ही नहीं !"

प्रभा निरुत्तर हो गई, हार गई । यह हार उसे बुरी नहीं लग रही थी । बोस भी आगे कुछ नहीं कह रहा था ।

झील के किनारे जगह-जगह सखने जड़ कर बैठने की जगहें बनादी गई थीं। सुनसान में केवल झींगर का तीखा स्वर सुनाई दे रहा था वह भी ओस से भीग कर धीमा पड़ रहा था। आकाश से बरसती कालिमा के बोझ से चारों ओर से घिरे घन पेड़ों के पत्ते भी निश्चल हो गये थे। उस अंधेरे में वे दोनों पास-पास, चुपचाप बैठे थे।

उस सुनसान को तोड़ने के भय से बहुत धीमे, गहरे स्वर में बोस गर्दन झुकाये बोला—"ऐसी काली रात में, ऐसी एकांत जगह में कोई पुरुष अपनी प्रेमिका को ले आये तो उसका अभिप्राय समझा जा सकता है ?"

प्रभा सिहिर उठी। वह घुटनों पर ठोडी रखे चुप रह गई, आंखें मुंद गई।······झील के इतने किनारे आजाने पर बोस की बांह के सहारे के बिना वह गहरे पानी में गिर पड़ेगी। वह उसकी बांह के सहारे की उत्कट प्रतीक्षा में थी परन्तु निश्चेष्ट थी प्रतीक्षा में।

सम्भाल लेने वाली बांह नहीं बढ़ी परन्तु बोस का अधीर स्वर फिर सुनाई दिया।—"तुम नहीं समझीं ?"

अब प्रभा को बोलना ही पड़ा—"जब आपने आपको दे ही डाला तो फिर······!"

प्रभा ने हृदय के सम्पूर्ण साहस से इतनी बड़ी बात कह डाली परन्तु बोस सुन्न बैठा रहा। प्रभा उत्कट रूप से विक्षिप्त थी—"जो होना है······वह तलवार की धार पर बिना सहारे कैसे खड़ा रहे ?" आतुरता से उसने अपना सिर बोस के कन्धे से टिका दिया।

बोस कुछ ठहर कर बोला और उसका स्वर सम्भला हुआ था—"दे डालने का मतलब कुछ और भी हो सकता है ! हम तुम मित्र हैं। आपस में धोखा नहीं होना चाहिये ! हम लोग व्यक्तिगत रूप से अपने-अपने लिये जिम्मेदार हैं। मेरी सीमायें हैं। मेरा परिवार है। ······हम केवल मित्र हैं।"

जैसे, पांव तले का पत्थर खिसकने से प्रभा सहसा पीछे हट गई। अपने आपको सहसा सम्भाल कर और गर्दन उठा बोस के चेहरे की ओर देखकर उसने पूछा—"क्या ?"

"मैं ठीक कह रहा हूँ।" बोस ने उसकी ओर देखा—"मैं तुम्हें प्यार करता हूँ इसलिये धोखा और झूठी आशा नहीं देना चाहता।"

'हूँ" प्रभा ने गर्दन झुकाली।

बोस भी कुछ देर बोला नहीं और फिर बोला—"मेरी सचाई से तुम्हें नाराज नहीं होना चाहिये।"

"धन्यवाद!"

कई मिनिट चुप रहने के बाद बोस फिर बोला—"चलो तुम्हें गाड़ी तक पहुँचा दूं ?"

"धन्यवाद!" प्रभा ने हाथ कोट की जेबों में धंसाकर कोहनियां समेटते हुये उत्तर दिया—'मैं अपने लिये जिम्मेवार हूँ। मैं गाड़ी तक जा सकती हूँ।"

"लेकिन तुम्हें यहां कैसे छोड़ सकता हूँ ?"

"यहीं छोड़ दिया यही अच्छा है।"

बोस फिर चुप बैठा रहा। प्रभा बोली—"आप परेशान न हों। आई हूँ तो लौट भी जाऊंगी।"

"बहुत बुरा मालूम होगा।"

प्रभा मजबूरी में उठ और आगे आगे चल दी। पगडण्डी पर वह कई बार ठुकराई परन्तु ऐसे सन्नाटा खींचे थी कि बोस की हिम्मत, सहारा देने की न हुई। वह चुपचाप पीछे पीछे चला आ रहा था।

बाजार की सड़क पर आ प्रभा ने एक टैक्सी वाले को इशारा किया और गाड़ी में बैठ बोस की ओर देखे बिना कहा—"धन्यवाद' फिर ड्राइवर की ओर देख बोली—"बैंकाई क्वाटर!"

बंगले के दरवाजे से बराम्दे की ओर जाते समय उसके कदम जोर से आहट कर रहे थे। बराम्दे में पहुँच उसे लीला के कमरे के पर्दे के पीछे से दबी हुई किलकिलाहट के साथ सुनाई दिया—'आ गई, अब आई।"

गर्दन ऊंची कर उस ओर देख प्रभा ने कड़े स्वर में उत्तर दिया—"अपने लिये मैं जिम्मेवार हूँ और जिम्मेवारी समझती हूँ।"

कपड़े उतारे बिना ही दोनों हाथ सिर के नीचे रख वह पलँगपोश

पर ही लेट गई। कोट भी नहीं उतारा और साड़ी भी नहीं। मसले जाकर कपड़े खराब हो जाने का भय उसे न रहा था। कोल्ड क्रीम लगाने और बालों में लहरें डालकर बांधने का ध्यान भी नहीं। सर्दी मालूम होने पर उसने वैसे ही पड़े पड़े लिहाफ ऊपर उलट लिया।

नींद नहीं आ रही थी और मुंदी हुई आंखों के सामने अभी कुछ दिन पहले की कल्पना दिखाई दे रही थी छोटे से बंगले के सामने लान पर दो हल्की आराम कुर्सियां और खेलता हुआ छोटा सा बालक!······खर्च उसके पास है परन्तु दूसरी कुर्सी रखने का अधिकार उसे नहीं है।

और वह शिथिल शरीर, नव प्रसूता एक नवजात शिशु को छाती से लगाए छिपने के लिये भाग रही है। पीछा करते भागते लोग चिल्ला रहे हैं··· "यह किसका है? इसे क्या अधिकार है? कौन जिम्मेवार है?"

इस वीभत्स कल्पना का उत्तर था—"अपनी-अपनी जिम्मेदारी!"